अप्रैल-जून 2011
ISSN:2320-7736

विज्ञान गरिमा सिंधु

अंक: 77

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक 77
अप्रैल–जून, 2011

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

761 HRD/13--1A

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– विश्वविद्यालयी छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की हिंदी माध्यम में प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित सामाजिक विषय होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या काग़ज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें।
6. लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा लेख में प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
7. श्वेत–श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
8. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
9. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट–लगा लिफाफा साथ न भेजें।
10. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यूनतम राशि 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपए है। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
11. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें :

    श्री अशोक एन सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली – 110066
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।
13. आप अपना लेख email द्वारा फोंट सहित भी भेज सकते हैं।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

कापीराइट ©2010
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली –110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली– 110 066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054
वेबसाइट www.cstt.nic.in
इमल vgs.cstt@gmail.com

761 HRD/13—1B

अध्यक्ष की कलम से .....

विज्ञान गरिमा सिंधु ' के प्रस्तुत अंक में चुने हुए विज्ञान–लेखकों के रोचक वैज्ञानिक लेखों का समावेश किया गया है। पर्यावरण के प्रति नित्यप्रति वृद्धिशील जागृति और जिज्ञासा की पुष्टि के लिए जाने–माने लेखक डॉ. दीपक कोहली ने ओजोन परत की संधारणीयता की प्रेरणा दी है तो नवनीतकुमार गुप्ता ने भारत को प्रकृति द्वारा प्रदत्त जैव विविधता के संरक्षण की। कृषि के क्षेत्र में एक ओर डॉ. नवीन कुमार बोहरा ने सुगंधी पादपों के बहुविध संवर्धन के जरिए आर्थिक समृद्धि का दिग्दर्शन कराया है तो दूसरी ओर सुविख्यात कृषिवैज्ञानिक डॉ. शंकरलाल ने धान–गेहूँ फसल–चक्र के कुप्रभावों के निदान के लिए अनुकरणीय विकल्प प्रस्तुत किए हैं।

आयुर्विज्ञान व स्वास्थ्य रक्षा के क्षेत्र में प्रो. नीरा कपूर ने मलेरिया–वाहक की रोकथाम की अतिनूतन युक्तियों का ज्ञानवर्धक विवरण प्रस्तुत किया है। डॉ. जे.एल. अग्रवाल ने रक्तदाब को नापने की विविध युक्तियों के विषय में उपयोगी सूचना दी है। स्वास्थ्य–रक्षा के लिए अंगूर और नाशपाती के उपयोगों पर दो लेखों में प्रकाश डाला गया है।

इस अंक में शामिल दो अन्य लेख पाठकों के विचारयोग्य है। श्री प्रशांत ने हिंदी–अंग्रेजी मिश्रित द्विभाषी माध्यम के उपयोग के संबंध में सप्रमाण सिद्ध किया है कि यदि अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाते समय छात्रों को उस विषय की हिंदी–शब्दावली की सम्यक् जानकारी दी जाए तो छात्रों को अपने विषय को समझना अधिक सरल हो जाएगा। 'पारिभाषिक शब्दसंग्रह का उपयोग' विषयक लेख में डॉ. के.के. शर्मा ने यह प्रतिपादित किया है कि हिंदी में विज्ञान–लेखन करते समय प्रामाणिक हिंदी तकनीकी शब्दावली का प्रयोग सदैव निष्ठापूर्वक करना क्यों अपेक्षित है।

आशा है सुविज्ञ पाठकों को हमारा प्रस्तुत अंक रोचक लगेगा। हमें आपसे आगामी अंकों के लिए उपयोगी और अद्यतन जानकारी से युक्त विज्ञान–विषय लेखों की अपेक्षा रहेगी।

केशरी

(प्रो.केशरी लाल वर्मा)
प्रधान संपादक
एवं
अध्यक्ष

दिल्ली

विज्ञान गरिमा सिंधु
हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी
अंक-77, अप्रैल–जून 2011

प्रधान संपादक
प्रो. केशरी लाल वर्मा
अध्यक्ष

संपादक
अशोक सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

विशेष सहयोग
देवेंद्र दत्त नौटियाल
ज्योति मलिक

प्रकाशन-मुद्रण व्यवस्था
डॉ. धर्मेन्द्र कुमार, स.नि.
श्री आलोक वाही
कलाकार
श्री कर्मचंद शर्मा
प्र.श्रे.लि.

बिक्री एवं वितरण
डॉ. बी. के. सिंह
वैज्ञानिक अधिकारी

संपर्क सूत्र
'संपादक'
विज्ञान गरिमा सिंधु
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7
आर. के. पुरम, नई
दिल्ली–110066

अनुक्रम

			पृ. सं.
1.	धरती का रक्षा कवच : ओजोन परत	*डा. दीपक कोहली*	1
2.	सुगंधित पादपों से आर्थिक समृद्धि	*डा. नवीन कुमार बोहरा*	4
3.	जैव विविधता से समृद्ध भारत	*नवनीत कुमार गुप्ता*	10
4.	अवरक्त प्रौद्योगिकी एवं इसके अनुप्रयोग	*घनश्याम तिवारी*	15
5.	उत्तर भारत के दोआबा क्षेत्र में फसल विविधीकरण के फायदे	*डॉ. शंकरलाल*	17
6.	मलेरिया–वाहक के रोकथाम की अद्यतन उपलब्धियाँ	*प्रो. नीरा कपूर*	21
7.	मानव–स्वास्थ्य व गुणकारी फल अंगूर	*डॉ. आर.एस. सेंगर एवं विवेकानंद प्रताप राय*	24
8.	रक्तदाब नापने का इतिहास	*डॉ.जे.एल. अग्रवाल*	27
9.	कॉफी : एक अंतरराष्ट्रीय पेय	*जगनारायण*	29
10.	स्वास्थ्यरक्षक नाशपाती	*मधु ज्योत्सना*	33
11.	पारिभाषिक शब्द–संग्रह का उपयोग : एक बहुमूल्य अनुभव	*डॉ. के.के. शर्मा*	35
12.	हिंदी–अंग्रेजी मिश्रित द्विभाषी माध्यम विज्ञान शिक्षा : आवश्यकता एवं भविष्य	*प्रशांत*	38
13.	विज्ञान समाचार	*डा. दीपक कोहली*	46–50
लेखक–परिचय			51
आयोग के प्रकाशन			52–55

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को बढ़ावा देने के लिए प्रकाशित की जाती है।

1

धरती का रक्षक कवच : ओजोन परत

• डॉ. दीपक कोहली

ब्रह्मांड में पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है, जहाँ हमारा जीवन संभव है। पृथ्वी चारों ओर वायुमंडल से घिरी है। वायुमंडल ठोस, द्रव और गैस के कणों से मिलकर बना है। यह स्थल एवं जलमंडल की ही भांति पृथ्वी का एक महत्वपूर्ण अंग है। वायुमंडल एक ऐसा आवरण है जो दिन में तो सूर्य की प्रखरता से रक्षा करता है तथा दूसरी ओर रात को पृथ्वी को अत्यधिक ठंडी होने से बचाता है।

वायुमंडल में मुख्यतः नाइट्रोजन (78 प्रतिशत), ऑक्सीजन (21 प्रतिशत) तथा शेष (1 प्रतिशत) अन्य गैसें जैसे–कार्बन डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, हीलियम, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, ऑर्गन आदि हैं। इसके अतिरिक्त जलवाष्प तथा धूल के कण भी हैं।

वायुमंडल को मुख्यतः चार स्तरों में विभाजित किया गया है : (प्रथम) क्षोभमंडल या ट्रोपोस्फिर, (द्वितीय) समतापमंडल या स्ट्रटोस्फियर, (तृतीय) मध्यमंडल या मीसोस्फियर, एवं चतुर्थ तापमंडल या आयानोस्फियर। इनमें 'क्षोभमंडल' वायुमंडल की सबसे निचली परती है। वायुमंडल के कुल परिमाण का तीन चौथाई भाग क्षोभमंडल पर निर्भर करता है। इस मंडल में ऊँचाई के साथ–साथ तापमान में कमी आती जाती है। इसके बाद आता है 'समतापमंडल' जिसमें ऊँचाई के साथ तापमान में बहुत कम परिवर्तन होता है अर्थात् तापमान लगभग एक समान रहता है। इसकी मोटाई अधिकतर ध्रुवों पर होती है जबकि विषुवत् रेखा पर इसका अस्तित्व कभी–कभी होता भी नहीं है। 'मध्यमंडल' में पहले तो तापमान बढ़ता है परंतु बाद में पुनः कम हो जाता है। 'तापमंडल' में तापमान 1700° सें. तक पहुँच जाता है और इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं होती।

वायुमंडल के विभिन्न स्तरों (मंडलों) में से समतापमंडल या स्ट्रटोस्फियर में ओजोन गैस से परिपूर्ण एक परत है जिसे ओजान–मंडल भी कहते हैं। यह ओजोन–मंडल पृथ्वी से 20–25 किलोमीटर की ऊँचाई पर सर्वाधिक है और लगभग 75 किलोमीटर की ऊँचाई पर यह न के बराबर होता है। जब सूर्य की पराबैंगनी किरणें वायुमंडल में ऑक्सीजन के साथ क्रिया करती हैं तो प्रकाश अपघटन के कारण ओजोन की उत्पत्ति होती है और यही ओजोन की परत सूर्य की पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर जीवजगत की इन घातक किरणों से रक्षा करती है।

ऑक्सीजन अपने तीन परमाणुओं से मिलकर ओजोन (O_3) गैस बनाती है जिसकी थोड़ी सी मात्रा भी जीवन के लिए मृत्यु का आमंत्रण होती है। परंतु यह जीवजगत के लिए हर्ष का विषय भी है। यह समतापमंडल में एक छतरी का कार्य करती है जोकि पूरे जैवमंडल के लिए ओज़ोन का सुरक्षा कवच कहलाता है। ओजोन गैस की खोज जर्मन वैज्ञानिक 'क्रिश्चियन श्योन बाइन' ने सन् 1839 में की थी।

ओजोन परत के अभाव में अथवा इसके क्षीण होने की स्थिति में यदि पराबैंगनी किरणें अधिक मात्रा में पृथ्वी की सतह पर पहुचेंगी, तो इनकी अत्यधिक ऊर्जा

761 HRD/13—2A

से सर्वत्र व्यापक उष्णता व्याप्त होकर संपूर्ण जीवमंडल को अनेक प्रकार से समाप्त करने की ओर अग्रसर हो जाएगी। यदि पृथ्वी के तापमान में 3.6° से. की वृद्धि हो जाए, तो आर्कटिक एवं अंटार्कटिका के विशाल हिमखंड पिघल जाएंगे और विश्व के सभी तटीय नगर, प्रदेश एवं छोटे–छोटे द्वीपसमूह डूब जाएंगे। पराबैंगनी किरणों के अन्य दुष्परिणामों में सम्मिलित हैं : शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास, त्वचा कैंसर, नेत्र–संबंधी रोग, वनस्पतियों की समाप्ति आदि।

वे रसायन जो ओज़ोन परत को हानि पहुँचाते हैं, उन्हें ओज़ोन क्षयक रसायन कहा जाता है। इनमें क्लोरोफ्लुओरोकार्बन (सी.एफ.सी.) मैथिल ब्रोमाइड आदि प्रमुख हैं। क्लोरोफ्लुओरोकार्बन फ्लोरीन, क्लोरीन व कार्बन अणुओं से मिलकर बनते हैं। ओज़ोन अवक्षयक रसायनों की खोज सन् 1928 में हुई थी। सीएफसी का उपयोग रेफ्रिजरेटर व एयरकंडीशनर में शीतलक के रूप में होता है। इसलिए ये रसायन हमारे दैनिक उपयोग के लिए लाभकारी हैं, लेकिन रासायनिक गुणों के आधार पर ये रसायन हमारे पर्यावरण को हानि पहुँचाते हैं।

अमेरिकी वैज्ञानिक 'रोलैंड' ने सन् 1972 में यह बताया कि वायुमंडल में क्लोरोफ्लुओरोकार्बन के कण अंटार्कटिका के ठीक ऊपर ओज़ोन परत को नुकसान पहुँचा रहे हैं। क्लोरोफ्लुओरोकार्बन अणु निष्क्रिय होने के साथ–साथ स्थायी भी होते हैं, जो सैकड़ों वर्षों तक वायुमंडल में विद्यमान रहते हैं। यह अणु पराबैंगनी किरणों से क्रिया करके क्लोरीन–मुक्त करते हैं, जो ओज़ोन को ऑक्सीजन में विघटितकर देते हैं एवं क्लोरीन के ऑक्साइड बनाते हैं। यह क्लोरीन ऑक्साइड पुनः एक मुक्त ऑक्सीजन परमाणु के साथ मिलाकर ऑक्सीजन और एक क्लोरीन परमाणु बना देते हैं। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार एक क्लोरीन परमाणु ओजोन के लगभग एक लाख अणुओं को नष्ट करता है।

वर्ष 1984 में वैज्ञानिकों ने प्रयोगों के आधार पर यह बताया कि दक्षिणी ध्रुव के ऊपर ओज़ोन परत बहुत पतली हो गई है, जिसे 'ओजोन–छिद्र' की संज्ञा दी गई। इसका आकार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पूरे भू–भाग और गहराई 'माउन्ट एवरेस्ट' के बराबर है। सन् 1988 में इस बात के पक्के सबूत मिल गए कि दक्षिणी ध्रुव प्रदेश के ऊपर 'ओज़ोन–छिद्र' क्लोरोफ्लुओरोकार्बनों से उत्पन्न क्लोरीन परमाणुओं के कारण ही हुआ था। अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों के वायुमंडलीय वैज्ञानिकों ने संयुक्त रूप से 'ऑप्स अनुसंधान केंद्र' स्थापित करके इसके प्रमुख कारकों अर्थात् क्लोरोफ्लुओरो कार्बन, हैलोन गैसों तथा अन्य कार्बन के हैलोजनीकृत गैसों की खोज की। इन रसायनों को ही ओज़ोन अवक्षयक पदार्थ कहते हैं। कुछ ग्रीन हाउस गैसें यथा कार्बन–डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, मेथेन आदि भी ओज़ोन परत को क्षति पहुंचाती हैं।

ओजोन परत की क्षति से पराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर सीधे आ जाती हैं। ये किरणें शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को घटा देती हैं, जिससे शरीर कई तरह के संक्रमणों के प्रति संवेदनशील हो जाता है और कई बीमारियों का शिकार हो जाता है, जैसे– खसरा (मीजल्स), छोटी माता (चिकन पॉक्स), कुष्ठ, कवक–जनित संक्रमण आदि। पराबैंगनी प्रकाश की किरणें आंखों की कई बीमारियों को पैदा करती है जिनमें मोतियाबिंद मुख्य है। कोशिकाओं में बंद डी.एन.ए. (आनुवंशिक पदार्थ) पराबैंगनी प्रकाश के प्रति काफी संवेदनशील होता है। डी.एन.ए. की क्षति से या तो कोशिका नष्ट हो जाती है या फिर कैंसर कोशिका में बदल जाती है। धरती की सतह पर अधिक पराबैंगनी प्रकाश रासायनिक कोहरे की समस्या को बढ़ाता है। इसके अलावा, पराबैंगनी किरणों की अधिक सांद्रता पादपों की वृद्धि पर नकारात्मक प्रभाव के साथ ही बीजों व फलों के उत्पादन को कम कर देती है। इन किरणों के प्रभाव से जलीय जीवन, प्लवकों, झींगों तथा शिशु मछलियों का विकास भी प्रभावित होता है। फलतः

761 HRD/13—2B

बड़े समुद्री जीवों के अस्तित्व के भी खतरे में पड़ने की आशंका हो जाती है। साथ ही समुद्री खाद्य सामग्री की भारी कमी भी उत्पन्न हो सकती है।

ओज़ोन छिद्र का वैश्विक तापमान पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। लगातार बढ़ रहे तापमान के कारण हिमखंड़ों के पिघलने की आशंका व्यक्त की जा रही है। ऐसा होने पर समुद्र के जल स्तर में 60–400 मीटर तक की वृद्धि हो जाएगी एवं समुद्र तटीय क्षेत्र जलमग्न हो जाएंगे। इतना ही नहीं ओजोन अवक्षय के कारण पृथ्वी का जलवायु तंत्र सर्वाधिक प्रभावित हो रहा है। जब ओज़ोन, पराबैंगनी किरणों को रोकती है, तो ताप का विसर्जन होता है और यही ताप, वायुमंडल के निर्माण में मुख्य भूमिका निभाता है। यदि ओजोन की मात्रा अथवा वितरण में कोई परिवर्तन होता है, तो वायुमंडल के तापमान में परिवर्तन होना निश्चित है।

ओज़ोन परत के अवक्षय को रोकने हेतु वैज्ञानिकों ने सी.एफ.सी. के विकल्पों की तलाश शुरू की। सी.एफ. सी. के विकल्पों से आशय उन वस्तुओं से है, जो समतापमंडल में स्थित ओजोन–परत को क्षति पहुँचाए बिना सी.एफ.सी. के स्थान पर काम में आ सकते हैं। ऐसे पदार्थों को ही 'ओजोन–मित्र पदार्थ' कहा जाता है। रसायन उद्योगों ने हाल के वर्षो में सी.एफ.सी. के विकल्पों को ढूँढ़ने में काफी तत्परता दिखाई है।

ओज़ोन अवक्षय की गंभीर समस्या को देखते हुए वर्ष 1987 मे मॉन्ट्रियल में एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया जिसमें विश्व के 47 देशों ने इस आशय का समझौता किया कि सन् 1999 तक विश्व में क्लोरोफ्लुओरो कार्बन का उत्पादन व उपयोग पूरी तरह बंद कर देंगे। लेकिन निर्णय का क्रियान्वयन ठीक से नहीं हुआ। इस समझौते पर अब तक 165 देश हस्ताक्षर कर चुके हैं। भारत ने भी ओजोन परत की हानि के दुष्परिणामों को देखते हुए वर्ष 1992 में मॉन्ट्रियल संहिता पर हस्ताक्षर करके ओजोन अवक्षयक रसायनों का उपयोग समाप्त करने का निर्णय लिया था। इस समस्या पर विश्वभर का ध्यान आकर्षित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने अपने पर्यावरण कार्यक्रमों के अंतर्गत 16 सितंबर का दिन 'अंतरराष्ट्रीय ओज़ोन परत संरक्षण दिवस' के रूप में मनाने का निर्णय लिया है। वर्ष 1995 से प्रारंभ किए गए इस कार्यक्रम के तहत् विश्व के तमाम देशों से ओज़ोन को क्षति पहुँचाने वाले रसायनों का कम से कम उपयोग करने की अपील की जा रही है।

आज वायुमंडल की ओज़ोन परत को काफी क्षति पहुँच चुकी है। यदि आज से ही ओज़ोन अवक्षय में सहायक रसायनों का निर्माण पूर्णतया बंद कर दिया जाता तो पुनः अपनी पूर्ण अवस्था में आने के लिए 80 वर्ष से भी अधिक का समय लग सकता है। हमारे पास अभी भी समय है कि अपनी भूल सुधारें वरना हमें अपनी लापरवाही के अत्यंत गंभीर परिणाम भुगतने होंगे।

ooo

2

सुगंधित-पादपों से आर्थिक समृद्धि

• डॉ. नवीन कुमार बोहरा

धार्मिक रूप से महत्वपूर्ण माने जाने वाले एवं प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण राज्य उत्तरांचल में सुगंधित (aromatic) एवं औषधीय पादप संपदाओं का अकूत भंडार है। उत्तरांचल सरकार ने सुगंधित फसलों के परिसंस्करण को सबसे महत्वपूर्ण उद्योग के रूप में मान लिया तथा इस हेतु 10 वर्षों तक 100 प्रतिशत उत्पाद–शुल्क में छूट एवं कई प्रकार की आर्थिक सहायता एवं अन्य प्रयासों से इसे एक विशिष्ट उद्योग के रूप में विकसित करने के प्रयास जारी हैं। कुछ पादप सुगंधित फसलों के रूप में आर्थिक समृद्धि हेतु उपयुक्त हैं। इस प्रकार आय–व्यय आंकडे क्षेत्र के अनुसार अलग–अलग हो सकते हैं।

1. **लेमन घास** : इसे साधारणतः नींबू घास या लेमन घास के नाम से जाना जाता है। वानस्पतिक भाषा में इसे "सिम्बोपागोन फलेक्सुओसस" कहते हैं। यह बहुवर्षीय फसल है तथा एक बार बुवाई करने के बाद 5 वर्ष तक फसल की प्राप्ति हो सकती है। इसमें पशुओं के चरने एवं खरपतवार की समस्या कम होने एवं बाजार में लगातार मांग एवं अच्छे दाम होने के कारण इसकी खेती पारंपरिक फसलों की तुलना में अधिक लाभकारी है। इसकी खेती बेकार एवं ढलान वाली भूमियों में भी संभव है तथा भूमि–कटाव रोकने हेतु एक उपयुक्त फसल है।

लेमन घास की जातियां 'प्रगति', 'प्रभान', 'कृष्णा' तथा 'कावेरी' व्यावसायिक खेती हेतु उपयुक्त मानी गई हैं। इसमें "सिट्रल" नामक रासायनिक अवयव 75 से 80 प्रतिशत तक मिलता है। इसके तेल का उपयोग इत्र, सौंदर्य–प्रसाधन, साबुन, विटामिन–ए, आदि बनाने में किया जाता है।

खेती : इसकी खेती हेतु समुचित जल–निकास वाली रेतीली दोमट मखरले से लेकर, ऊसर एवं क्षारीय एवं ढलान वाली भूमियें में की जा सकती है। इस हेतु उष्ण एवं उपोष्ण, उच्च आर्द्रता वाली जलवायु उपयुक्त है। इसके प्रवर्धन के लिए वानस्पतिक स्लिपों का रोपण 60×45 से.मी. के अंतराल पर फरवरी–मार्च एवं जुलाई से अक्टूबर में करना चाहिए।

इसकी खेती हेतु 10 से 15 टन गोबर की खाद, नाइट्रोजन 200 किग्रा. फॉस्फोरस 80 किग्रा. एवं पोटैशियम 60 किग्रा. प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष की आवश्यकता पड़ती है। यह 4–5 वर्ष की अवधि की फसल है तथा इसे 8–10 सिंचाई प्रतिवर्ष की जरूरत होती है।

इसकी प्रथम कटाई रोपण के 4–5 माह बाद एवं अगली कटाई हर 3 माह के अंतराल पर (प्रतिवर्ष 4–5 कटाई) करना उपयुक्त रहता है। इससे हरा शाकीय भाग 400 क्विंटल/हैक्टेयर/वर्ष, तथा आसवन से तेल की उपज लगभग 200 किग्रा./हैक्टेयर/वर्ष तक प्राप्त हो सकती है।

इसकी खेती हेतु कृषि–कार्य पर लगभग 27,000 रुपए प्रति हैक्टेयर/वर्ष की लागत आती है जबकि आय, तेल की औसत दर 350 रुपए/कि.ग्रा. के आधार

पर लगभग 70,000 रुपए/हैक्टेयर/वर्ष होती है। इस प्रकार शुद्ध लाभ लगभग 43,000 रुपए/हैक्टेयर/वर्ष तक प्राप्त हो सकता है।

2. जामारोजा : इसे वानस्पतिक भाषा में "सिम्बोपोगान नारडस" कहा जाता है। इसकी किस्में RRL-82 एवं CN-5 व्यापारिक खेती हेतु महत्वपूर्ण मानी गई हैं। इसका प्रमुख उपयोगी तत्व **जिरेनियॉल** है जो 65 से 70 प्रतिशत तक इसमें पाया जाता है।

जामारोजा की फसल खाली खेतों एवं बेकार भूमियों में आसानी से उगाई जा सकती है। यह विशेष रूप से वन क्षेत्रों के आसपास के क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी गई है। इसे पशु नहीं चरते है तथा इसकी एक बार रोपाई के उपरांत इससे 4 वर्षों तक फसल की प्राप्ति हो सकती है। इसके तेल का प्रयोग मुख्यतया साबुन, सुगंध इत्र–निर्माण (परफ्यूमरी) तथा सौंदर्य–प्रसाधनों में किया जाता है।

खेती : इसकी खेती हेतु समुचित जल–निकास वाली रेतीली दोमट एवं चिकनी दोमट भूमि उपयुक्त होती है। इसकी खेती हेतु उच्च आर्द्रता एवं उष्ण/उपोष्ण जलवायु उपयुक्त रहती है। इसका प्रवर्धन वानस्पतिक स्लिप्स द्वारा किया जाता है। इस हेतु 45×30 सेमी. की दूरी पर फरवरी, मार्च अथवा जुलाई से अगस्त तक रोपण किया जाता है।

अच्छी उपज हेतु 10–15 टन गोबर की खाद, नाइट्रोजन 200 किग्रा., फॉस्फोरस 80 किग्रा. तथा पोटेशियम खाद 75 किग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष देना उपयुक्त रहता है। प्रति वर्ष लगभग 10–12 सिंचाई करने पर उपज में वृद्धि होती है। इसे प्रति 34 बार काटा जा सकता है तथा जलवाष्प से आसवन कर रसायन प्राप्त किया जाता है।

उपज : इससे 300 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष का शाकीय भाग प्राप्त होता है तथा तेल–उपज 150 किग्रा./हेक्टेयर प्रतिवर्ष प्राप्त होती है।

इसकी खेती में कृषि कार्यों पर व्यय लगभग 16,000 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष आता है जबकि आय लगभग 48,750 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष प्राप्त होती है। इस प्रकार शुद्ध लाभ 32,750 रुपए/हेक्टेयर/वर्ष प्राप्त होता है। इसकी लागत एवं आय क्षेत्र–विशेष के आधार पर पृथक् होती है।

3. **जावा घास** : इसे सिट्रोनेला जावा घास आदि नामों से जाना जाता है। इसे वानस्पतिक भाषा में "सिंबोपोगोन विन्टरिएनस" कहते हैं। इसकी एक बार रोपाई के बाद चार वर्ष तक फसल प्राप्त हो सकती है तथा इस प्रकार इस बहुवर्षीय फसल की प्रतिवर्ष बुआई नहीं करनी पड़ती है। इसमें खरपतवार की समस्या कम होती है तथा पशुओं के चरने की समस्या नहीं होती है। जावा घास की बाजार में निरंतर मांग एवं अच्छे दाम के कारण यह पारंपरिक फसलों की तुलना में अधिक लाभकारी है।

जावा घास की **मंदाकिनी, मंजरी, जौर लैब, सी–2, बायो–13, जलपल्लवी** आदि जातियां व्यापारिक महत्व की हैं। इसमें पाए जाने वाले प्रमुख रासायनिक तत्व इस प्रकार हैं –

1. सिट्रोनेलैत्व (12–24 प्रतिशत)
2. जिरेनिआल (12–24 प्रतिशत)
3. सिट्रोनेलैल (25–45) प्रतिशत

इसका तेल, साबुन, अपमार्जक, (डिटर्जेंट), सौंदर्य–प्रसाधन, मच्छर भगाने एवं इत्र–सुगंध निर्माण (परफयूमरी) आदि में, सुरभि–संरक्षण (फ्रेगेन्स फॉर्मुलेशन) में प्रयुक्त होता है।

खेती : इसकी खेती समुचित जल–निकास वाली रेतीली दोमट से लेकर चिकनी मिट्टी में की जाती है

761 HRD/13–3A

तथा उष्ण एवं उपोष्ण उच्च आर्द्रता वाली जलवायु इस हेतु उपयुक्त रहती है।

प्रवर्धन हेतु वानस्पतिक स्लिपों का रोपण फरवरी–मार्च अथवा जुलाई से अक्टूबर तक किया जाता है। इन स्लिपों का रोपण 60×45 सेमी. की दूरी पर फरवरी–मार्च अथवा जुलाई से अक्टूबर में करना चाहिए। यह 4–5 वर्ष तक चलने वाली फसल है अतः 10–15 टन गोबर की खाद, नाइट्रोजन 200 किग्रा., फॉस्फोरस खाद 80 किग्रा. एवं पोटाश खाद 75 किग्रा./हेक्टेयर/वर्ष डालना उचित रहता है।

इसकी उपज हेतु 10–12 सिंचाई प्रतिवर्ष करना उपयुक्त रहता है। फसल की पहली कटाई 6 माह बाद एवं अगली कटाई 4 माह के अंतराल पर कर 3–4 कटाई प्रतिवर्ष प्राप्त की जा सकती है। इसकी औसत उपज हरे शाकीय भाग के रूप में 250 क्विंटल/हेक्टेयर/वर्ष तथा तेल उपज (आसवन द्वारा) 220 किग्रा./हेक्टेयर/प्रतिवर्ष तक प्राप्त हो सकती है।

लाभ : इसकी खेती में कृषि–कार्यों पर व्यय लगभग 25,000 रुपए/हेक्टेयर/प्रतिवर्ष आता है जबकि इसके तेल की औसत दर 325 प्रति किग्रा. के अनुसार आय लगभग 71,500 रुपए/हेक्टेयर/प्रतिवर्ष तक हो सकती है।

जिरेनियम : इसे साधारण भाषा में गुलाब–जिरेनियम या सुगंधि जिरेनियम कहते हैं। वानस्पतिक भाषा में इसे "पेलार्गोनियम ग्रैविओलेन्स" कहते हैं। यह पहाड़ी क्षेत्रों के लिए सफल है एवं अन्य पहाड़ी फसलों की अपेक्षा यह अधिक लाभकारी मानी जाती है। मैदानी क्षेत्रों में इसकी फसल से दो कटाई प्राप्त की जा सकती है।

इसे गुलाब तेल का प्रतिस्थानी माना जाता है तथा इसी कारण बाजार में इसके तेल की मांग लगातार बनी रहती है। इसे पशु नहीं चरते तथा कम पानी वाले क्षेत्रों में इसकी खेती की जा सकती है। इसे ढलान वाले क्षेत्रों में भी उगाया जा सकता है। पहाड़ी क्षेत्रों में यह पारंपरिक फसलों की अपेक्षा अधिक लाभकारी है। इसकी मुख्य जातियाँ बोरबोन, एलजीरियन, हिम–पवन टाईप आदि उपयुक्त मानी गई हैं।

इसमें सिट्रोनेलैल (20–35 प्रतिशत) एवं जिरेनिऑल (6.45 से 18.5 प्रतिशत) तक पाए जाते हैं। इसके तेल का उपयोग सौंदर्य–प्रसाधनों, साबुन, भेषज निर्माण, सुगंधि उद्योग एवं सौरभोपचार (ऐरोमाथिरेपी) आदि में होता है।

खेती : इसे उचित निकास वाली भुरभुरी, हल्की, अम्लीय भूमि एवं साधारण भूमि वाली समतल, ढालू एवं पहाड़ी नालियों वाली भूमि में उगाया जा सकता है। यह फसल शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु हेतु उपयुक्त है जबकि यह उच्च ताप एवं आर्द्रता के प्रति संवेदनशील मानी जाती है।

इसे मैदानी क्षेत्रों में एकवर्षीय फसल के रूप में फरवरी से जून तक उगाया जा सकता है जबकि पर्वतीय क्षेत्रों में यह बहुवर्षीय फसल के रूप में उगाई जाती है।

इसकी खेती हेतु 10–15 टन सड़ी गोबर की खाद, नाइट्रोजन 160 किग्रा., फॉस्फोरस खाद 40 किग्रा. एवं पोटाश खाद 40 किग्रा./हेक्टेयर/वर्ष भूमि में मिलाना उपयुक्त रहता है। इसकी अच्छी उपज हेतु 6–8 सिंचाई प्रतिवर्ष करना उपयुक्त रहता है।

उत्पादन : उपज हेतु प्रथम कटाई रोपण के 4–5 माह बाद एवं उसकी अगली कटाई 3 माह के अंतराल पर की जाती है, फिर शाकीय भाग के जलवाष्प द्वारा आसवन कर तेल प्राप्त किया जाता है। इसकी खेती द्वारा 250 क्विंटल/हेक्टेयर/वर्ष तक शाकीय भाग एवं 25 किग्रा. प्रति हेक्टेयर/वर्ष तक तेल प्राप्त किया जा

761 HRD/13–3B

सकता है।

लाभ : इसके कृषि–कार्यों पर लागत लगभग 40,000 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष आती है जबकि इसके तेल की औसत दर 3200 रुपए प्रति किग्रा. के हिसाब से आय 80,000 रुपए प्राप्त होती है। इस प्रकार शुद्ध लाभ लगभग 40,000 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष तक प्राप्त किया जा सकता है।

कैमोमाइल : इसे साधारणतः कैमोमाइल अथवा मैट्रीकेरिया के नाम से जाना जाता है। वानस्पतिक भाषा में इसे "मैट्रीकेरिया कैमोमाइल" के नाम से जाना जाता है। इसकी जर्मन टाइप एवं बल्लरी जातियाँ व्यापारिक महत्व की मानी गई हैं।

यह पहाड़ों के ढलान वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है तथा फसल अवधि कम होने, परिष्करण की आवश्कता नहीं होने, सूखे फूलों का बाज़ार उपलब्ध होने, कम लागत एवं पशुओं द्वारा चरने की समस्या न होने से इसे लाभकारी फसल माना जाता है। इसमें एजुलीन एवं, "अल्फा बिसाबेलोल" रसायन पाए जाते हैं जिनका उपयोग (तेल के रूप में) महंगे इत्रों एवं औषधियों के निर्माण में किया जाता है।

खेती : इसकी खेती मृत्तिका की प्रचुरता वाली एवं अधिक जलधारण–क्षमता वाली भूमि में करना उपयुक्त माना गया है। यह शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु के लिए उपयुक्त फसल है।

इसे बीज द्वारा सीधे खेत में बोया जाता है या पौधशाला तैयार कर इसका प्रवर्धन किया जाता है। बीज द्वारा सीधे बुवाई करने हेतु 2½–3 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर एवं नर्सरी द्वारा उगाने पर 1 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। इसकी खेती हेतु 4–6 सिंचाई (6 माह की फसल अवधि के दौरान) की जाती है।

रोपण के 2 माह पश्चात् फूलों के पूर्ण विकसित होने पर तोड़कर छाया में सुखाया जाता है जिन्हें वाष्प आसवन कर तेल प्राप्त किया जाता है। औसतन इससे 40–50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर ताजा फूल अथवा 8–10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर सूखे फूल मिलते हैं जिनके आसवन से 5 किग्रा. तेल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो सकता है।

लाभ : इसकी खेती में कृषि कार्यों पर व्यय लगभग 27,000 रुपए प्रति हेक्टेयर आता है जबकि तेल दर 12,000 रुपए प्रति किलोग्राम के आधार पर आय लगभग 60,000 रुपए प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। इस प्रकार शुद्ध लाभ 33000 रुपए प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो सकता है।

पचौली : इसे वानस्पतिक भाषा में "पोगोस्टेमन पचौलाई" कहते हैं। इसकी मुख्य व्यापारिक महत्व की जातियां **जौहर, इंडोनेशियन** टाइप हैं। इसमें एल्फा एवं बीटा पचौलीन (35.40 प्रतिशत) एवं पचौलोल (40–45 प्रतिशत) पाए जाते हैं।

यह एक बहुवर्षीय फसल है अतः एक बार बुआई करने के बाद 4 वर्ष तक फसल प्राप्त की जा सकती है। छायादार खेती हेतु यह उत्तम फसल है। इसे पशु नहीं चरते तथा बाजार में निरंतर मांग एवं अच्छे दाम होने के कारण पारंपरिक फसलों की तुलना में इसे अधिक लाभकारी माना जाता है। इसके तेल का उपयोग इत्र–निर्माण, सौंदर्य–प्रसाधन एवं खुशबुओं के मिश्रण में किया जाता है।

खेती : पचौली की खेती हेतु छायादार एवं समुचित जल–निकास वाली दोमट, मटियार दोमट एवं बलुई दोमट मिट्टी – जिसका पीएच मान 6.5 से 7.5 हो, उपयुक्त रहती है। यह पादप उष्ण एव उपोष्ण आर्द्र जलवायु के लिए उपयुक्त माना गया है।

इस चार वर्षीय फसल हेतु 10–15 टन गोबर की

खाद, नाइट्रोजन 150 किग्रा., फॉस्फोरस 60 किग्रा. एवं पोटाश खाद 50 किग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष भूमि में मिलाना उपयुक्त रहता है। प्रतिवर्ष 10–12 सिंचाई से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

उपज : इसकी प्रथम कटाई पौध–रोपण के 5 से 6 माह बाद एवं प्रत्येक अगली कटाई 4–4 माह के अंतराल पर की जाती है। इससे 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष सूखी पत्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं, जिनके वाष्प आसवन द्वारा 40 से 50 किग्रा./हेक्टेयर तेल प्रतिवर्ष प्राप्त किया जा सकता है।

लाभ : इसकी खेती पर कृषि–कार्यों में लगभग 38,000 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष लागत आती है जबकि तेल की बाजार दर 2500 रुपए प्रति किलोग्राम के आधार पर आय लगभग 95,000 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष प्राप्त होती है। इस प्रकार शुद्ध लाभ लगभग 57,000 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष प्राप्त हो सकता है।

तुलसी : इसे फ्रेन्च बेसिल भी कहते है। तुलसी को धार्मिक रूप में एवं विभिन्न प्रकार की सुगंध विकसित करने, खाद्य पदार्थों तथा औषधि–निर्माण में एक महत्वपूर्ण पादप के रूप में माना जाता है। वानस्पतिक भाषा में इसे "ओसिमम बैसिलिकम" कहते हैं।

इससे मात्र 70 से 80 दिनों में फसल प्राप्त हो सकती है। वर्षा पर आधारित क्षेत्रों एवं जंगल के आस–पास के क्षेत्रों के लिए यह उत्तम फसल है। इसे पशु नहीं चरते। कृषकों के खेत में ही इसकी गुणवता बढ़ाई जा सकती है तथा बाजार में इसकी अत्यधिक मांग होने के कारण यह उपयोगी एवं लाभकारी फसल है। इसकी "मीठी तुलसी" जाति व्यापारिक रूप से महत्वपूर्ण मानी जाती है।

इसमें मेथल चेबिकोल (65–75 प्रतिशत) एवं लिनोलूल (10–15 प्रतिशत) नामक रसायन पाए जाते हैं। इसका प्रयोग विभिन्न प्रकार की सुगंध विकसित करने, खाद्य पदार्थों में एवं औषधि निर्माण में किया जाता है।

खेती : इसकी खेती उचित जल–निकास वाली दोमट एवं बलुई मिट्टी में की जाती है। समशीतोष्ण जलवायु के लिए यह उपयुक्त फसल है। इसका प्रवर्धन जून माह में बीजों द्वारा सीधे खेत में या पौधशाला में तैयार कर किया जा सकता है। बीज द्वारा सीधे बुवाई करने पर 2½–3 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है जबकि नर्सरी में उगाने पर बीज की मात्रा 1 किग्रा./हेक्टेयर पर्याप्त होती है।

यह मात्र 70–80 दिन की फसल है। इसकी अच्छी उपज हेतु 4 से 5 टन गोबर की खाद, नाइट्रोजन 70 किग्रा. फॉस्फोरस 30 किग्रा. तथा पोटाश खाद 30 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की मात्रा भूमि में मिलाना उपयुक्त रहता है। इस फसल की 2–3 सिंचाई करना उचित रहता है।

उपज : पौधे पर पूर्ण पुष्पक्रम आने पर सितंबर में फसल की कटाई की जाती है। इससे हरा शाकीय भाग 175 क्विंटल से 200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है जिसके जलवाष्प आसवन से 70 से 80 किग्रा. प्रति हेक्टेयर तेल प्राप्त होता है।

लाभ : इसकी खेती में कृषि–कार्यों पर व्यय लगभग 7000 रुपए/हेक्टेयर आती है, जबकि इसके तेल की औसत दर 250 रुपए प्रति किग्रा. के अनुसार लगभग 20,000 रुपए प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार शुद्ध 13,000 रुपए प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त हो सकता है।

गुलाब : गुलाब या दमस्क गुलाब को वानस्पतिक भाषा में "रोजा डेमेसिना" के नाम से जाना जाता है। इसकी प्रमुख जातियाँ "नूरजहां", "ज्वाला", "हिमरोज", "रानी साहिब" व्यापारिक महत्व की हैं।

यह बहुवर्षीय (10–15 वर्षों तक फसल–प्राप्ति) फसल है अतः प्रत्येक वर्ष, बुवाई से छुटकारा मिल जाता है। यह पहाड़ी क्षेत्र के ढलान तथा दूरस्थ क्षेत्रों के लिए अति उपयुक्त है। इसे खेत में ही गुणता–सुधार करके उपयोगी बनाया जाता है तथा यह बहूपयोगी उत्पाद है। बाजार में निरंतर मांग एवं अच्छे दामों के कारण इसे पारंपरिक फसलों की तुलना में अधिक लाभकारी माना जाता है।

इसमें सिट्रोनेलैल (22–32 प्रतिशत), जिरनिऑल (12–15 प्रतिशत) एवं नीरॉल (8–12 प्रतिशत) रसायन पाए जाते हैं। इसके तेल का उपयोग इत्र, सौंदर्य–प्रसाधन, तंबाकू उद्योग, खाद्य उद्योग एवं औषधे आदि में किया जाता है।

खेती : इसे समुचित जल–निकास वाली मध्यम दोमट मिट्टी में उगाया जा सकता है। यह शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु के लिए उपयुक्त फसल है।

इसका प्रवर्धन कलमों द्वारा किया जा सकता है। इसके पौधों को मैदानी क्षेत्रों में 30×30×30 सेमी. के गड्डों में 1×1 मीटर की दूरी पर तथा शीतोष्ण क्षेत्रों में 2×2 मीटर की दूरी पर पौधों में लगाया जाता है। समशीतोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में रोपण जनवरी में एवं शीतोष्ण क्षेत्रों में अक्टूबर–नवंबर या जनवरी–फरवरी में करना चाहिए। यह 10–15 वर्षीय फसल है तथा एक बार लगाने के बाद 10–15 वर्ष तक बुवाई से छुटकारा मिल जाता है।

इसकी अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु 20–25 टन गोबर/कंपोस्ट खाद, नाइट्रोजन 100 किग्रा., फॉस्फोरस 50 किग्रा. तथा पोटाश खाद 50 किग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष भूमि में मिलाना उचित रहता है। इसकी प्रतिवर्ष 10–12 सिंचाई करना भी उचित रहता है।

उपज : इसके फूलों की तुड़ाई प्रातःकाल के समय में मार्च–अप्रैल/मई माह में रोपण के 18 माह बाद की जाती है। इसके फूलों का जन–आसवन कर तेल प्राप्त किया जाता है।

समशीतोष्ण जलवायु में इससे 20–30 क्विंटल/हेक्टेयर प्रतिवर्ष एवं शीतोष्ण जलवायु में 40–50 क्विंटल/हेक्टेयर प्रतिवर्ष फूल प्राप्त होते हैं। इसके आसवन से समशीतोष्ण जलवायु में 0.4–0.5 किग्रा/हेक्टेयर/वर्ष तेल एवं 1010 लिटर/हेक्टेयर/वर्ष गुलाब जल प्राप्त हो सकता है।

शीतोष्ण जलवायु में 0.5–1.2 किग्रा./हेक्टेयर/वर्ष तेल एवं 1010 लिटर/हेक्टेयर/वर्ष गुलाब–जल प्राप्त हो सकता है।

लाभ : समशीतोष्ण जलवायु में कृषि–कार्यों पर व्यय लगभग 33,000 रुपए/हेक्टेयर/वर्ष आता है जबकि आय लगभग 1 लाख रुपए (तेल की दर 2 लाख/किग्रा. एवं गुलाब जल 30 रुपए/लिटर के आधार पर) तक प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार शुद्ध लाभ 78,000 रुपए/हेक्टेयर/वर्ष तक प्राप्त हो सकता है। शीतोष्ण जलवायु में औसत लाभ 30–40 प्रतिशत अधिक प्राप्त हो सकता है।

इस प्रकार उत्तराखंड में सुगंधित फसलों से आर्थिक समृद्धि बढ़ाई जा सकती है। इस हेतु सरकारी प्रयास भी जरूरी हैं।

3

जैव-विविधता से समृद्ध भारत

• *नवीन कुमार गुप्ता*

हमारी जीवनदायी धरती जीवन के रंग–बिरंगे रूपों से सजी है। भांति–भांति के पेड़–पौधे और जीव–जंतुओं की उपस्थिति धरती को जीवनमय बनाए हुए है। जैव विविधता के कारण धरती मनोहर और सुंदर बनी हुई है। एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर 55 लाख जातियों में से अब तक लगभग 17.5 जातियों को पहचाना जा चुका है। जिनमें से अधिकतर कीट हैं। परंतु सभी जीव प्रजातियों का वितरण पूरी पृथ्वी पर एक जैसा नहीं है। रेगिस्तान एवं बर्फीले क्षेत्रों में जैव विविधता की मात्रा वर्षा–वनों की तुलना में बहुत कम है। कुछ क्षेत्रों जैसे प्रवाल भित्ति क्षेत्रों में असीम जैव–विविधता विद्यमान है। पृथ्वी पर पायी जाने वाली लगभग 50 प्रतिशत जातियाँ केवल भूमि के 7 प्रतिशत हिस्से में ही सीमित हैं। हालांकि नई जातियों की खोज लगातार जारी है बहुत सी जातियों की खोज हो जाने के बावजूद अभी उन्हें वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकृत किया जाना बाकी है।

भारत विशिष्ट भू–आकृतियों तथा विभिन्न जलवायु वाला देश होने के कारण जैव–विविधता की समृद्धि के लिए अनुकूल स्थान है। हमारे देश में अत्यधिक वर्षा वाले स्थान से लेकर कम वर्षा वाले रेगिस्तान भी हैं। यहां अत्यंत ठंडे और बर्फ से ढके पहाड़ी क्षेत्र, ठंडे रेगिस्तान, समुद्र तटीय क्षेत्र और दलदली क्षेत्र विद्यमान हैं। ये सभी स्थान विभिन्न रूपों व गुणों वाले जीव–जंतुओं एवं पेड़–पौधों को आश्रय प्रदान करते हैं। इसी कारण हमारे देश की गिनती विश्व के 12 सबसे समृद्ध जैव–विविधता वाले क्षेत्रों में की जाती है।

हालांकि भारत के पास पूरे विश्व की भूमि का 2.4 प्रतिशत हिस्सा है, फिर भी यह क्षेत्र कुल जैव विविधता के लगभग 7 से 8 प्रतिशत हिस्से को आश्रय प्रदान करता है। अभी तक भारत में लगभग 46,000 वनस्पति जातियों की पहचान की जा चुकी है, जिनमें से लगभग 15,000 फल–फूल वाले पौधे, 2,500 ब्रायोफाइट, 1000 प्रकार के पर्णांग (फर्न), 1,600 प्रकार के शैक (लाइकेन), 2,300 प्रकार के शैवाल तथा 12,500 तरह के फफूंद पाए जाते हैं। इन आंकड़ों से ज्ञात होता है कि पूरे विश्व की 7 प्रतिशत बिना फूल वाली वनस्पतियां व 6 प्रतिशत फल–फूल वाले पौधे भारत में पाए जाते हैं। वन एवं पर्यावरण संबंधी एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 77,000 जंतुओं की जातियाँ पाई जाती हैं। जिनमें 372 स्तनधारी जातियाँ, 1228 प्रकार के पक्षी, 428 प्रकार के सरीसृप तथा 204 प्रकार के उभयचर, 2546 प्रकार की मछलियाँ तथा 5000 से ज्यादा मृदुकवची यानी मोलस्क एवं 50,000 से ज्यादा कीटों की जातियां पाई जाती हैं।

भारत विश्व के 25 हॉट स्पॉट यानी प्रचुर जैव–विविधता वाले ऐसे स्थानों में शामिल है जो जैव विविधता के लिहाज से सबसे समृद्ध हैं। इन 25 हॉट स्पॉट क्षेत्रों में से पश्चिम घाट व श्रीलंका तथा भारत–बर्मा क्षेत्र (पूर्व हिमालय क्षेत्र) को मुख्य 8 हॉट स्पॉट क्षेत्रों में रखा गया है। भारत को पर्यावास विविधता (हैबिटेट डाइवर्सिटी) के आधार पर 12 जैव भौगोलिक अंचलों में बांटा गया है। इसी के साथ भारत में 26 ऐसे स्थानिक केंद्र निर्धारित

किए गए हैं जो अब तक ज्ञात पुष्पी पौधों में से दो–तिहाई जातियों का घर हैं।

खाद्यान्न विविधता

भारत में उगाई जाने वाले विभिन्न फसलों में भी असीम जैव–विविधता देखने को मिलती है। हमारे देश में जो फसलें उगाई जाती हैं उनमें से 66 जातियों व उनसे संबद्ध लगभग 320 जंगली जातियों का जन्म स्थान भारत ही है। आपको यह जानकर एक सुखद आश्चर्य अवश्य होगा कि आज से लगभग 50 साल पहले तक भारत में चावल की लगभग 50,000 से 60,000 किस्में उगाई जाती थीं। भारत को चावल, अरहर, आम, हल्दी, अदरक, गन्ना आदि की 30,000–50,000 किस्मों की खोज का केंद्र माना जाता है। इसके अलावा गेहूं, दालों, नींबू, गन्ने, आम, अदरक, हल्दी, आदि की फसलों में भी हमें काफी विविधता देखने को मिलती है। इस विविधता का अपना विशेष महत्व है। एक ही अनाज की विभिन्न जातियां भिन्न–भिन्न मौसमों व स्थानों के अनुकूल होती हैं जिससे हर स्थान के वातवरण के अनुसार फसल ली जा सकती है।

जैव–विविधता से भरपूर क्षेत्र : कच्छ वनस्पति–क्षेत्र और प्रवाल भित्ति क्षेत्र

कच्छ वनस्पति–क्षेत्र और प्रवाल–भित्ति क्षेत्र महत्वपूर्ण तटीय पर्यावरणीय संसाधन हैं जोकि समुद्री जीव जातियों को आश्रय प्रदान करते हैं। इन क्षेत्रों में समुद्री जीवों को जीवन के लिए अनुकूल वातावरण मिलने के साथ ही तीव्र मौसमी बदलावों से भी सुरक्षा मिलती है। महासागरों में स्थित प्रवाल भित्ति क्षेत्रों मे अतुल्य जैव विविधता है। हालांकि संपूर्ण पृथ्वी के लगभग एक प्रतिशत हिस्से पर ही इनका अस्तित्व है परंतु ये समुद्री जीवों–विशेषकर मछलियों की 25 प्रतिशत जातियों का आश्रय स्थल हैं। प्रवाल भित्ति क्षेत्र में केकड़े, स्टारफिश, झींगे, डॉल्फिन, शार्क व अनेक जातियों की मछलियाँ और विभिन्न वनस्पतियां – जैसे लाल शैवाल, हरा शैवाल, भूरा शैवाल एवं मोलस्क मिलते हैं। इसी प्रकार कच्छीय वनस्पति क्षेत्र मछलियों व अन्य जलीय जीवों के लिए उत्तम आवास–स्थल हैं। भारत में कच्छीय वनस्पतियां विश्व की लगभग पांच प्रतिशत हैं जोकि तटीय राज्यों और केंद्र–शासित प्रदेशों में 4445 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हुई हैं। पर्यावरण मंत्रालय ने उड़ीसा में राष्ट्रीय कच्छ वनस्पति आनुवंशिक संसाधन केंद्र की स्थापना की है ताकि कच्छीय वनस्पतियां के संरक्षण और प्रबंधन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया जा सके।

जैव–मंडलीय आरक्षित क्षेत्र

स्थलीय और तटीय पारिस्थितिकी प्रणाली में आनुवंशिक विविधता बनाए रखने के लिए जैवमंडलीय आरक्षित क्षेत्र की स्थापना की गई। इन क्षेत्रों को यूनेस्को के "मानव और जैवमंडल कार्यक्रम" के तहत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिली है। जैवमंडलीय आरक्षित क्षेत्र का उद्देश्य जीव–जंतुओं और सूक्ष्म जीवों की विविधता को बनाए रखने के साथ ही पर्यावरण के प्रति जनमानस में जागरूकता का प्रसार करना भी है। देश में 15 जैवमंडलीय क्षेत्रों में से चार आरक्षित क्षेत्रों–सुंदरवन (पश्चिम बंगाल), मन्नार की खाड़ी (तमिलनाडु), नीलगिरि (तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक) और नंदादेवी (उत्तराखंड), को विश्व के जैवमंडलीय आरक्षित क्षेत्रों में शामिल किया गया है। भारत में जीवों के लिए रक्षित क्षेत्रों में 513 वन्यजीव अभयारण्य, 41 संरक्षण तथा चार सामुदायिक आरक्षित क्षेत्र (रिर्जव) शामिल हैं।

भारतीय संस्कृति में जैव–विविधता

प्राकृतिक पर्यावरण और सांस्कृतिक पर्यावरण को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। सांस्कृतिक पर्यावरण के द्वारा मानव पर्यावरण के विभिन्न तत्वों से सुमधुर संबंध बनाता है। भारतीय संस्कृति पर्यावरण में सह–अस्तित्व की भावना पर बल देते हुए समस्त

जीव–जंतुओं एवं वनस्पतियों के प्रति आदर भाव व्यक्त किया जाता रहा है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति और जैव–विविधता के संरक्षण की परंपरा प्राचीनकाल से रही है। गौतम बुद्ध, महावीर, रवींद्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानंद, गांधीजी आदि महापुरुषों के विचारों में प्रकृति–प्रेम और जीवन के विविध रूपों के प्रति आदर–भाव देखा जा सकता है। राष्ट्रपिता गांधीजी प्राणी मात्र को एक समान मानते थे। उनका कहना था कि "मैं केवल मानव जाति के बीच ही भाईचारे अथवा उसके साथ तादात्म्य की स्थापना नहीं करना चाहूंगा, बल्कि पृथ्वी पर रेंगने वाले जीवों सहित समस्त प्राणिजगत् के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहूंता, क्योंकि हम सब एक ही ईश्वर की संतान हैं। इसलिए जीवन जितने रूपों में हैं, सब मूलतः एक ही हैं।" 26 दिसंबर से 31 दिसंबर 2006 तक मणिपुर, सिक्किम में आयोजित चौदहवीं बालविज्ञान कांग्रेस के उद्घाटन समारोह में जैव–विविधता की महत्ता के बारे में विचार व्यक्त करते हुए तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए.पी. जे.अबुल कलाम ने कहा था कि "जैव विविधता से परिपूर्ण हमारी धरती सदैव रचनात्मकता का संदेश देती है और इस रचनात्मकता से मानव नई खोजों, आविष्कारों और अनुसंधानों द्वारा विकास के मार्ग पर बढ़ता जाता है। इस प्रकार धरती की सुंदर जैव–विविधता का मानवीय विकास से गहरा संबंध है। अतः जैव–विविधता संरक्षण से मानव न केवल प्रकृति का सम्मान करता है वरन् वह स्वयं भी अपने भविष्य को संवारता है।"

जलवायु–परिवर्तन से प्रभावित होती जैव–विविधता

जलवायु परिवर्तन के कारण जैव–विविधता में सर्वाधिक तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। पृथ्वी ग्रह के औसत तापमान में लगातार वृद्धि जारी है। तापमान में होने वाली वृद्धि का प्रभाव पृथ्वी के पूरे वातावरण पर पड़ रहा है। जिसके कारण पृथ्वी पर उपस्थित जीवन को विभिन्न संकटों का समाना करना पड़ रहा है। विचारणीय बात यह है कि जब जीवन के विविध रूपों के लिए प्रकृति ने इस ग्रह पर इतनी अनुकूल परिस्थितियां कायम की हैं तो फिर मानव इस ग्रह के नाजुक संतुलन से छेड़छाड़ कर क्यों जीवन के विविध रूपों के लिए खतरा उत्पन्न कर रहा है।

जलवायु परिवर्तन के कारण अनेक जीव धरती से विलुप्त हो सकते हैं। जलवायु परिवर्तन पर गठित अंतर–सरकारी पैनल (आईपीसीसी) के अनुसार यदि प्रकृति के दोहन की हालत यही बनी रही तो सन् 2100 तक तापमान में डेढ़ से छह प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। जिसके कारण वन्य पशुओं और वनस्पतियों की करीब 12,000 जातियां देखते ही देखते खत्म हो जाएंगी। एक अनुमान के अनुसार यदि सदी के अंत तक तापमान 1.5 से 2.7 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाता है, तो पौधों और जीवों की करीब 20 से 30 प्रतिशत जातियां हमेशा के लिए विलुप्त होने की हालत में पहुंच जाएंगी।

वैसे जैव–विविधता मानवीय गतिविधियों से भी प्रभावित हो रही है। अत्यधिक औद्योगीकरण का परिणाम प्रदूषण के रूप में सामने आया है। प्रदूषित पर्यावरण, यहां तक कि पर्यावरण में बदलाव, किसी भी ऐसी जाति के जीवन के लिए खतरा पैदा कर देता है जो इसके अनुकूल खुद को नहीं ढाल पाती है। पहले ही बहुत सी जातियां (जैसे डोडो) हमेशा के लिए विलुप्त हो चुकी हैं। बहुत सी अन्य जातियां विलुप्त होने की कगार पर खड़ी हैं। विलुप्तता वह स्थिति है जब किसी जाति–विशेष का कोई भी सदस्य न बचा हो। एक बार विलुप्त हो जाने के बाद किसी जाति को वापस लाने का कोई रास्ता नहीं है। सफेद बाघ, गिद्ध, बाघ एवं डॉल्फिन जैसी सर्वाधिक संकटग्रस्त जातियों की ओर हमें तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि इन जीवों को बचाया जा सके। अवैध शिकार के कारण मोर, बाघ, हिरण, भालू, गैंडे व शेर जैसे जीवों का अस्तित्व खतरे में हैं। जहां मोरपंखों के कारण हर साल हजारों मोरों को मार दिया जाता है,

वहीं कस्तूरी के लिए कस्तूरी–मृगों का अवैध शिकार किया जाता है। यहीं नहीं विभिन्न प्रकार की भ्रांतियों के चलते उल्लुओं, बाघों एवं गैंडों जैसे अनेक जीवों को महज इसलिए मार दिया जाता है कि उनके अंगों से बनी औषधियों के सेवन से स्वास्थ्य व संपत्ति की प्राप्ति हो सके। समाज से जब तक ऐसे अंधविश्वास मिट नहीं जाते तब तक जैव–विविधता संरक्षण संबंधी कोई भी अभियान सफल नहीं हो सकता। इसके लिए समाज में जागरूकता की आवश्यकता है ताकि जनमानस अंधविश्वासों व रुढ़ियों से ऊपर उठकर जैव–विविधता के महत्व को समझ सके।

जैव–विविधता संरक्षण के लिए प्रयासरत सरकारी संस्थाएँ

भारत में प्राकृतिक संसाधनों के सर्वेक्षण और अन्वेषण के लिए 16 फरवरी, 1890 को "भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण" (बोटेनिकल सर्वे ऑफ इंडिया या बी एस आई) की स्थापना की गई थी। स्वतंत्रता के बाद इसका पुनर्गठन किया गया। अब यह संस्था दुर्लभ और विलुप्त हो रही वनस्पति जातियों को सूचीबद्ध करने, संरक्षण की कार्यनीति बनाने और कमजोर पारिस्थितिकी तंत्र, अभयारण्यों, राष्ट्रीय पार्कों और जैवमंडलीय आरक्षित क्षेत्रों का अध्ययन करने व जैव–विविधता के प्रलेखन से संबंधित कार्य कर रही है। इसी प्रकार 1916 में भारतीय प्राणि विज्ञान सर्वेक्षण (जेड एस आई) की स्थापना की गई जो देश के समृद्ध जंतु–विविधता के अध्ययन एवं प्रलेखन से संबंधित कार्य करता है। जैव–विविधता से संबंधित देश की एक अन्य प्रमुख संस्था भारतीय वन सर्वेक्षण, देहरादून है जो देश के वन क्षेत्रों और वन संसाधनों से संबंधित सूचना और आंकड़ों को एकत्र करती है। इसकी स्थापना 1 जून, 1981 को की गई थी।

जैव–विविधता संरक्षण के लिए प्रयास

जैव–विविधता के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व तथा पर्यावरण के साथ उसकी निकटता को ध्यान में रखते हुए जैव–विविधता संरक्षण के लिए प्रयास तेज हो गए हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 2010 को अंतरराष्ट्रीय जैव विविधता वर्ष के रूप में मनाया गया। हमारे देश में जैव–विविधता संरक्षण की दिशा में सार्थक कदम उठाए जा रहे हैं। जैव–विविधता के संरक्षण के लिए वृहद् स्तर पर कार्य किया जा रहा है। हमारे देश में 61 विभिन्न लुप्तप्राय जातियों के संरक्षण के लिए, भारतीय प्राणी उद्यानों में संभावित संरक्षित प्रजनन पहचान कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई जा रही है, जिसके अंतर्गत आरंभिक चरण में गिद्धों, चित्रित आच्छदर कूर्म (पेंटेड रूफ टर्टल), ब्लिथ ट्रैगोपन, हसूम्स फीजेंट तथा पैंगोलियन जीवों के लिए संरक्षित प्रजनन केंद्रों की स्थापना की गई है। इसके अलावा कुछ विशेष जीवों के लिए व्यापक रूप से कार्ययोजना चल रही है जैसे कि सन् 1973 से आरंभ की गई बाघ परियोजना, जोकि बाघों के संरक्षण से संबंधित है। हालांकि अब इसकी सफलता को लेकर सवाल उठ रहे हैं। देश में कच्छीय वनस्पतियों और प्रवाल भित्तियों के संरक्षण एवं प्रबंधन की दिशा में सार्थक कदम उठाए गए हैं। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम (1986) के अंतर्गत तटीय विनियमन जोन अधिसूचना (1991) में कच्छीय वनस्पतियों तथा प्रवाल भित्तियों को पारिस्थितिकीय रूप से संवेदनशील क्षेत्र के रूप में मान्यता दी गई है। इन क्षेत्रों के विस्तार के लिए सरकार ने 38 कच्छीय वनस्पति क्षेत्रों तथा चार प्रवाल भित्ति क्षेत्रों के व्यापक संरक्षण के लिए विशेष पहल की है।

जैव–विविधता को बनाए रखने के लिए सरकार के साथ–साथ नागरिकों को भी आगे आना होगा। जीवन के हर रूप को बचाने के लिए हमें सजग और सचेत होना होगा। हमें वन्य प्राणियों के शिकार को रोकना होगा और उन पहलुओं पर भी ध्यान देना होगा जिनके चलते वन्य प्राणियों का शिकार किया जाता है। वन्य

प्राणियों के अंगों का उपयोग औषधीय रूप में करने संबंधी सभी भ्रांतियों और अंधविश्वासों के प्रति समाज को जागरूक बनाना होगा तभी ऐसे घृणित कार्य रुकेंगे। जीवन के हर रूप का सम्मान कर ही हम इस पृथ्वी का जीवनदायी और सुंदर ग्रह का दर्जा बरकरार रख पाएंगे।

राष्ट्रीय प्रतीक	हिन्दी का नाम	वैज्ञानिक नाम
भारत का राष्ट्रीय फूल	कमल	नेलंबो न्यूसिपेरा गार्टन
भारत का राष्ट्रीय फल	आम	मैंजीफेरा इंडिका
भारत का राष्ट्रीय वृक्ष	बरगद	फाइकस बेंगालेंसिस
भारत का राष्ट्रीय पक्षी	मोर	पेवो क्रिस्टेटस
भारत का राष्ट्रीय पशु	बाघ	पैंथरा टाइग्रिस
भारत का राष्ट्रीय विरासत पशु	हाथी	एलिफैस मैक्सिमस

4

अवरक्त प्रौद्योगिकी एवं इसके अनुप्रयोग

• घनश्याम तिवारी

मनुष्य की सभी ज्ञानेंद्रियों में दृष्टि का सर्वोत्तम स्थान है। सैन्य विशेषज्ञ कहते हैं कि भविष्य में विजय उंसी को सुशोभित करेगी जो विधुत चुम्बकीय तरंगों का समुचित प्रयोग करेगा। आजकल रात्रि में भी लड़ाइयां होती हैं। युद्ध में ऐसी प्रणालियों की आवश्यकता होती है जो 24 घंटे कार्य कर सकें। अवरक्त प्रौद्योगिकी इसके लिए काफी अच्छी चुनौतियां प्रदान करती है।

वैद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम में लाल रंग के तरंगदैर्घ्य (वेव लैंक्थ) के उपरांत बढ़ते हुए क्रम में जो अदृश्य तरंगें आती हैं उन्हें इन्फ्रारेड अथवा अवरक्त किरणें कहा जाता है। प्रत्येक वस्तु जोकि शून्य डिग्री के कैल्वि से अधिक तापमान पर स्थित है, उसमें अणुओं एवं परमाणुओं के कंपन तथा घूर्णन के कारण ऊर्जा का निरंतर उत्सर्जन होता रहता है। यह ऊर्जा अवरक्त विकिरण के रूप में हमारे पास पहुंचती है।

सेना में अवरक्त किरणों की पद्धति का उपयोग प्रथम विश्व युद्ध के दौरान लघु परास की संचार व्यवस्था के लिए किया गया था। द्वितीय विश्व युद्ध के समय अवरक्त प्रौद्योगिकी का प्रयोग टैंक के अग्नि नियंत्रण के लिए किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् इस क्षेत्र में संसूचकों के निर्माण में तेजी से विकास हुआ। प्रारंभ में जेट एयरक्राफ्ट की गर्म सतह को जाँचने में इसे प्रयुक्त किया गया ।

अवरक्त प्रौद्योगिकी के मूल में तापीय प्रतिबिंबन यंत्र प्रौद्योगिकी है। इनको निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है:–

(क) सक्रिय तंत्र : इनमें दृश्य को पहले अवरक्त स्रोत द्वारा प्रकाशित किया जाता है। दृश्य से परावर्तित किरणों को ग्राही (रिसीवर) द्वारा संसूचित किया जाता है। सुरक्षा की दृष्टि से इनका सीमित उपयोग सैन्य अनुप्रयोगों में है एवं असैन्य क्षेत्रों में इनकी काफी उपयोगिता है। प्रकाशिकी द्वारा अवरक्त विकिरण को एकत्र करके संसूचक पर फोकस किया जाता है, जो उसे विद्युत संकेतों में परिवर्तित कर देता है।

(ख) अल्पनिष्क्रिय तंत्र तारे अथवा चंद्रमा के शेष परावर्तित प्रकाश (0.4 माईक्रॉन से 0.9 माईक्रॉन तक) परावर्तित प्रकाश का संवेदन करता है। इसमें अल्पप्रकाशीय (लो लाइट) टेलीविजन आदि आते हैं।

(ग) पूर्णतया निष्क्रिय तंत्र उन यंत्रों को कहते हैं जिन्हें कार्य करने के लिए किसी प्रकार के कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है।

वायुमंडल में अवरक्त किरणों के दो पारगम्य बैंड हैं जिन्हें वायुमंडलीय विंड़ोज भी कहा जाता है। इनमें 3 से 5 माइक्रॉन तथा 8 से 12 माइक्रॉन हैं जिनमें अधिकतम ऊर्जा संचालित होती है।

अवरक्त विकिरण संसूचक दो प्रकार के होते हैं:– फोटॉन संसूचक तथा तापीय संसूचक। फोटॉन संसचूकों में आपातित फोटॉन सीधे इलेक्ट्रॉन हौल का जनन करते हैं। ये त्वरित रूप से कार्य करते हैं। परंतु इन्हें क्रायोजनिक तापमान 120 डिग्री कैल्विन अथवा उसे कम तक शीतलन की आवश्यकता होती है। तापीय संसूचक इस सिद्धांत

पर आधारित है कि आपतित फोटॉन संसूचक से टकराने के पश्चात् अवशोषित हो जाते हैं। वे अपनी ऊर्जा संसूचक के आणविक संरचना की कंपन ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं। तापीय संसूचक में किसी गुणधर्म जैसे चालकता/ध्रुवण इत्यादि में बदलाव आता है।

अवरक्त संसूचक पदार्थों में शुरुआत में बाहर से डोप किया गया जर्मोनियम इस्तेमाल किया जाता था। बाद में मरकरी कैडमियम टेलूराइड और लेडटिन टेलूराइड जैसे पदार्थों के विकास से प्रथम पीढ़ी के तापीय प्रतिबिंबत्रों का जन्म हुआ। इनका टयूनेबल बैंड 1 से 20 माइक्रोन तक तरंगदैर्घ्य में कार्य करने में समर्थ था।

सीधी बैडगैप मिश्रधातु मरकरी कैडमियम टेलूराइड उच्च अवशोषण नियंतांक इसे संसूचक पदार्थ की श्रेणी में ले आया।

अवरक्त (इन्फ्रारेड) संसूचकों का पदार्थ के आधार पर निम्नलिखित श्रेणीकरण किया जाता है :

(क) इंट्रिजिक डाइरेक्ट बैंडअंतराल अर्धचालक (इंडियन एंटीमोनाइड, मरकरी कैडमियम टेलूराइड)

(ख) अपद्रव्यी (एक्सट्रिंजिक) अर्धचालक (जरमेनियम)

(ग) अवरक्त फोटो चालक (एल्युमिनियम गैलियम आर्सेनाइड)

(घ) सिलिकॉन शाटकी बैरियर

(च) उच्च तापमान अतिचालक (सुपरकंडक्टर)

तापीय संसूचक के लाभ निम्नलिखित हैं:–

(क) ये हल्के होते हैं। अतः सैन्य अनुप्रयोगों में उपयुक्त हैं।

(ख) ये बृहत स्पेक्ट्रमी परास (रेंज) में कार्य करते हैं।

(ग) इनका प्रयोग कमरे के तापमान पर किया जाता है।

(घ) इनकी स्पेक्ट्रमी अनुक्रिया तरंगदैर्घ्य पर निर्भर करती है।

फोटोज संसूचकों के निम्नलिखित लाभ हैं:–

(क) इनकी डिटेक्टिविटी काफी अधिक होती है।

(ख) यह द्रुत गति से कार्य करते हैं।

(ग) इनकी तकनीक अधिक परिपक्व होने के कारण ये बहु–स्पेक्ट्रमी (मल्टी स्पेक्ट्रल) एवं अति स्पेक्ट्रमी (हाइपर स्पेक्ट्रल) तापीय प्रतिबिंबित्रों में प्रयुक्त किए जाते हैं।

अवरक्त प्रौद्योगिकी की निगरानी एवं सर्वेक्षण, लक्ष्य–अर्जन तंत्र, प्रक्षेपास्त्र गाइडैन्स (मिसाइल गाइडैन्स) अवरक्त प्रतियुक्ति; माइन संसूचक एवं अवरक्त खोज व अनुवर्तन तंत्र में सैन्य अनुप्रयोगों हेतु उपयुक्त है। ये औद्योगिक अनुप्रयोगों में प्रक्रिया अनुवीक्षण, अनाशक संपरीक्षण, प्रदूषण अनुवीक्षण आदि में उपयुक्त हैं।

अवरक्त प्रौद्योगिकी नैदानिक चिकित्सा में निम्नलिखित अनुप्रयोगों हेतु विशेष तौर पर उपयुक्त है।

(क) **बॉडी स्कैन** : मनुष्य के शरीर को स्कैन करने हेतु ऊष्मलेखन (थर्मोग्राफी) का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न माँसपेशियों के अंतर्गत ताप असमांगता (टेम्परेचर इनहोमोजिटी), शोध (इनफ्लैमेशन), रक्तस्राव (हेमरेज), माँसपेशी का घिसना (मसल टियर) एवं फ्रैक्चर आदि के उपचार में उपयोगी है।

(ख) **टयूमर एवं कैंसर की पहचान** : संवहनी स्कैन (कडक्टिव स्कैन) द्वारा शरीर के विभिन्न ऊतकों की कोशिकाओं में ऐसी बढ़ोतरी का पता लगाया जा सकता है जो कि असाध्य या सुसाध्य टयूमर की सूचक हो।

अंत में यह कहा जा सकता है कि अवरक्त प्रौद्योगिकी ने मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को अत्यधिक प्रभावित किया है।

ooo

5

उत्तर भारत के दोआबा क्षेत्र में फसल विविधीकरण के फायदे

• डॉ. शंकर

भूमिका : उत्तर भारत के दोआबा क्षेत्र में धान–गेहूँ फसल चक्र अपनाया जा रहा है। पिछले दशकों में उसकी अत्यंत आवश्यकता थी, क्योंकि उस समय देश में खाद्यान्नों की भारी कमी थी। परंतु अब खाद्यान्नों का उत्पादन इतना बढ़ गया है कि इनके भंडारण की समस्या उत्पन्न हो गई है। इसलिए दोआबा क्षेत्र में खाद्यान्नों की मांग कुछ दशकों से कम हो गई है। धान–गेहूँ फसल चक्र के अपनाने से खाद्यान्नों की पैदावार में वृद्धि तो हुई है लेकिन इसके कुछ दुष्परिणाम भी सामने आए हैं। इनके निपटारे के लिए फसल विविधीकरण एक मात्र विकल्प है।

2. धान–गेहूँ फसल चक्र के दुष्परिणाम : धान–गेहूँ फसल चक्र को लगातार अपनाने से मृदा, वातावरण, भंडारण, विपणन, समाज, आदि संबंधी कई समस्याएँ सामने आई हैं, जो निम्नलिखित हैं :

2.1 भूमिगत पानी का दोहन : धान–गेहूँ फसल चक्र की दोनों फसलों को अत्यधिक पानी की आवश्यकता पड़ती है जिसके लिए भूमिगत पानी पर आश्रित होना पड़ता है। भूमिगत पानी के लगातार दोहन करने से पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूमिगत पानी के स्तर में लगभग 30–45 से.मी./वर्ष की दर से गिरावट आ रही है। इसके फलस्वरूप अधिक नलकूपों का खनन मुश्किल पड़ रहा है। इन प्रांतों में भूमिगत क्षारीय पानी के प्रयोग से मृदा में क्षारीयता तीव्रता से बढ़ती जा रही है, जिसके कारण सामान्य फसल उगाना संभव नहीं हो पा रहा है।

2.2 मृदा के स्वास्थ्य में गिरावट : दोआबा क्षेत्र में धान–गेहूँ, फसल चक्र में पोषक तत्वों का दोहन भूमि में प्रयोग किए जाने वाले तत्वों की मात्रा से कहीं अधिक होता है। इसके कारण भूमि में उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश तत्वों में भारी कमी आई है जिसके कारण इन पोषक तत्वों को संस्तुत मात्रा में डालने पर भी सामान्य पैदावार नहीं प्राप्त होती है। साथ ही दोआबा क्षेत्र में अब धान की फसल हल्की बलुई भूमि में उगाई जाने लगी है, जहाँ पोषकतत्व (विशेषतौर से नाइट्रोजन) पानी के साथ रिसकर भूमि की नीचे की परत में चली जाती है और इस प्रकार इसका ह्रास होता है। जिंक, लोहा, मैंगैनीज और तांबे की कमी इस फसल चक्र में उभर कर आ रही है। इसके कारण इन फसलों की पैदावार में लगातार ठहराव/गिरावट आ रही है।

धान की रोपाई के लिए खेत में पानी भर जुताई की जाती है–जिसको अंग्रेजी में 'पडलिंग' (आलोडन) कहते हैं, जिसके फलस्वरूप भूमि की नीचे की परत पत्थर की तरह कड़ी पड़ जाती है जिससे अतिरिक्त पानी रिसकर नीचे नहीं जा पाता है और भूमि में लवण एकत्रित होकर मृदा को क्षारीय बना देते है। यही नहीं, गेहूँ की फसल की जड़ों के फैलाव में अवरोध होता है। धान के पुआल के विघटन के लिए जीवाणुओं की संख्या

में तेजी से वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप नाइट्रोजन की अधिकांश मात्रा इस क्रिया (विघटन) में नष्ट हो जाती है।

2.3 खरपतवार, बीमारियों और कीटों में वृद्धि : धान–गेहूँ फसल–चक्र के लगातार अपनाने से सूक्ष्म जलवायु (माइक्रो–क्लाइमेट) में परिवर्तन आता है, जिसके कारण घास (एकदली खरपतवारों) में वृद्धि हुई है। दोदलीय खरपतवारों की तुलना में इन पर नियंत्रण पाना प्रायः कठिन होता है। क्रिट्ट (रस्ट), कंड (स्मट) रोगों के अतिरिक्त पछैती बुवाई वाले गेहूँ में 'करनाल बंट' नामक बीमारी का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। इसी प्रकार धान में वी.एल.वी, (गुतान अंगमारी) और तना गलन बीमारियाँ उभरकर आ रही हैं। वी.वी.पी. एच, जड़ की घुन, हिस्पा और रसाद (थ्रिप्स) भयंकर रूप धारण कर रही हैं। उसी प्रकार, प्रायः यह कीट–व्याधियों से मुक्त था। अब इसमें माहू, सैनिक शलभ, (चने की सूंडी) और मिली बग का प्रकोप होने लगा है।

2.4 ऊर्जा की अत्यधिक खपत : धान–गेहूँ फसल चक्र में पानी व रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग अत्यधिक होता है, जिससे ऊर्जा का उपयोग अधिक होता है। यह अनुमान लगाया गया है कि सिंचित गेहूँ की जिस फसल में उत्पादन 30 क्विंटल/हेक्टेयर होता है, उसके लिए 20000 किलो कैलौरी ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है जिसका लगभग 60 प्रतिशत भाग रासायनिक उर्वरकों के रूप में होता है। उसी प्रकार धान की रोपाई और गेहूँ की बुवाई के लिए खेत की तैयारी के लिए भारी मात्रा में ऊर्जा की आवश्कता पड़ती है। साथ ही धान व गेहूँ की कटाई और मड़ाई में भारी मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है।

2.5 संरक्षण प्रदान करने वाले भोजन में कमी : दोआबा क्षेत्र में धान–गेहूँ फसल चक्र के अपनाने से कुपोषण की समस्या बढ़ गई क्योंकि संरक्षण देने वाले खाद्यान्नों, सब्जियों और फलों की खेती में कमी आई है।

2.6 जलवायु वातावरण में गिरावट : धान के खेतों में पानी एकत्रित रहने से मच्छरों को वृद्धि करने के लिए अच्छा वातावरण मिल जाता है। इन क्षेत्रों में इसके कारण मलेरिया का प्रकोप की बढ़ता जा रहा है। धान के और गेहूँ के अवशेषों के विघटन के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी न होने के कारण किसान विवश होकर इनको जलाता है जिससे वातावरण में प्रदूषण फैलता है। इस प्रक्रिया में कार्बनिक पदार्थ के नष्ट होने के साथ–साथ नाइट्रोजन और गंधक गैस के रूप में नष्ट हो जाती है। इस फसल चक्र के कारण कुछ समय से क्षेत्रगत आय में ठहराव आ गया है।

3. फसल विविधीकरण की आवश्यकता : धान–गेहूँ, फसल–चक्र के लगातार अपनाने से जो उपरोक्त समस्याए उत्पन्न हुई हैं उनका समाधान करने के लिए फसल विविधीकरण एक मात्र विकल्प है। इसमें धान, और गेहूँ को पूर्णरूप से या आंशिक रूप से अन्य लाभदायक फसलों से विस्थापित करना है। इस दिशा में सुझाव निम्न प्रकार हैं :

3.1 गेहूँ के अंतर्गत विविधीकरण : गेहूँ की बुवाई का उपयुक्त समय मध्य नवंबर है, लेकिन तोरिया, आलू, अगैती अरहर, गन्ना और देर से पकने वाले धान की कटाई के बाद बुवाई पिछड़कर जनवरी तक की जाती है। गेहूँ की देरी से बुवाई करने से इसकी पैदावार में कमी आती है। भारी क्षेत्र में यदि गेहूँ की एक ही जाति उगाई जाती है तो किसी भी बीमारी के फैलने से भारी मात्रा में क्षति होने की आशंका रहती है। इसलिए गेहूँ वाले कुछ स्थानों पर ट्रिटीकेल, कठिया गेहूँ या जौ की खेती करनी चाहिए जिससे बीमारी के फैलने से होने वाली क्षति से बचा जा सकता है और भूमि में बीमारी के जीवाणुओं की जैवमात्रा में भी गिरावट आएगी। साथ ही

उल्लेखनीय है कि गेहूँ की वर्तमान जातियाँ पछैती बुवाई के लिए उपयुक्त नहीं है और गेहूँ की कुछ जातियाँ खरपतवारनाशी दवाओं के प्रति अवरोधी नहीं है जिससे खरपतवार नियंत्रण के लिए इन दवाओं के छिड़काव करने से गेहूँ की फसल को भी क्षति पहुँचती है।

3.2 गेहूँ का आंशिक रूप से प्रतिस्थापन : गेहूँ के साथ सरसों की अंतःसफल भी लाभदायक है। इसके लिए गेहूँ की आठ–आठ पंक्तियों के बाद एक पंक्ति सरसों या 12 पंक्ति गेहूँ के बाद 4 पंक्ति सरसों की उगाने से सरसों से लगभग 2–5 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार प्राप्त हो जाती है और इसका गेहूँ की पैदावार पर कुप्रभाव नहीं पड़ता है, मक्का–आलू–गेहूँ चक्र से गेहूँ की पैदावर लगभग 5 क्विं/हे. कम मिलती है, लेकिन फसल–चक्र की सरल उत्पादकता बढ़ जाती है। धान–आलू–गेहूँ और धान–आलू–मूँग फसल क्रम गेहूँ के आंशिक रूप से प्रतिविस्थापन के लिए उपयुक्त हैं। लेकिन इनको विस्तृत क्षेत्र में नहीं अपना सकते हैं। विस्तृत क्षेत्र में फसल चक्र गेहूँ–मूंग–धान को अपनाने से मिट्टी के स्वास्थ्य में गिरावट नहीं आती है।

3.3 गेहूँ का पूर्णरूप से प्रतिस्थापन : गेहूँ का अन्य उपजाऊ फसलों से प्रतिस्थापन भी उपयुक्त होता है। इसका प्रतिस्थापन निम्न फसलों से किया जा सकता है :

(1) **मटर द्वारा प्रतिस्थापन :** मटर की बुवाई का समय वही होता है जोकि गेहूँ का, लेकिन इसको उगाने में कम उर्वरकों और सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इसके साथ ही यह मार्च माह में पक जाती है जिसके बाद ग्रीष्मकालीन मूँग व उड़द, गन्ना, चारा और सब्जियों की फसलें सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। मटर की पैदावार 20 क्विंटल/हेक्टेयर और गर्मी की मूँग की पैदावार 10 क्विं/हेक्टे. है जो मिलकर गेहूँ के समतुल्य पैदावार से अधिक हो जाती है। मटर एक दलहनी फसल है। अतः इससे भूमि की उर्वरता बढ़ जाती है। मटर की बौनी व चूर्णित आसिता अवरोधी और अधिक पैदावार देने वाली जातियां–जैसे अपर्णा, पूसा प्रभात, डीडीआर 27, पंत पी 42, पंत पी 5, डीडीआर 23 उपलब्ध हैं।

(2) रबी मक्का द्वारा प्रतिस्थापन : उत्तर पश्चिम–भारत में मक्का रबी के मौसम भी उगाई जा सकती है। लेकिन इसको उगाने में गेहूँ की तुलना 50 कि. नाइट्रोजन/हे. और 2–3 सिचाइयाँ अधिक देनी पड़ती हैं क्योंकि यह मई तक वृद्धि करती रहती है। इसकी कटाई उस समय की जाती है जबकि हरे चारे की कमी होती है। इसका चारा गेहूँ के भूसे की तुलना में अधिक पौष्टिक होता है। यदि इसकी कड़बी (स्टोवर) को यूरिया और शीरा से उपचारित करके साइलेगण में परिवर्तित कर दें तो यह और अधिक पौष्टिक हो जाती है। इसको खिलाने से दुधारू जानवरों में दूध की मात्रा बढ़ जाता है।

(3) आलू द्वारा प्रतिस्थापन : प्रायः आलू की पैदावार गेहूँ से अधिक मिलती है। इसके साथ ही साथ आलू के बाद उगाई गई मूँग/उड़द की पैदावार से गेहूँ के बाद उगाई गई पैदावार अधिक मिलती है। इस प्रकार से धान–आलू–मूँग फसल से कम से 130 क्विं/हेक्टे. समतुल्य पैदावार मिलती है। जबकि धान–गेहूँ से केवल 80 क्विं/हेक्टे धान समतुल्य और धान गेहूँ–मूँग फसल कम से 90 क्विं/हेक्टे. धान समतुल्य पैदावार मिलती है।

(4) मसूर द्वारा प्रतिस्थापन : अब मसूर की अनेक जातियों का विकास किया जा चुका है जिनको धान के बाद (गेहूँ के स्थान पर) बोया जा सकता है। इन जातियों में पंत एल 406, पंत एल 639, सपना, पंत एल 4, लैंस 4076, प्रिया, पूसा वैभव, गरिमा, शेरी, हरियाणा मसूर–1, नूरी, एलएल 56, एल एल 147, एल एल 699, आदि प्रमुख हैं। गेहूँ के स्थान पर मसूर को उगाने से

लागत तो कम लगती ही है, भूमि की उर्वरक शक्ति भी बढ़ जाती है।

(5) चना द्वारा प्रतिस्थापन : धान–गेहूँ, फसल–चक्र के स्थान पर धान–चना, फसल–चक्र अधिक लाभकारी है क्योंकि चने से गेहूँ समतुल्य पैदावार अधिक मिलती है। लागत कम होती है और सिचाइयाँ भी कम करनी पड़ती हैं और भूमि की उर्वरक शक्ति बढ़ जाती है। दोआबा क्षेत्र के लिए चनों की अधिक पैदावार देने वाली जातियां जैसे एचसी 3,ए पूसा चमत्कार, पूसा 256, गंगवार, आरएसजी 888, अवरोधी, केपीजी 59, डीसी पी 92–3ए करनाल चना–1, उपलब्ध हैं। इन जातियों में प्रमुख रोगों के प्रति रोधकता है।

3.4 धान का प्रतिस्थापन :

(1) धान का प्रतिस्थापन धान के अंतर्गत : धान को श्री विधि द्वारा उगाने से कम पानी की आवश्यकता पड़ती है। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बासमती या सुगंधित धान को बौनी जातियों के स्थान पर उगाया जा सकता है। यद्यपि इनकी पैदावार कम होती है लेकिन इनका बाजार में अधिक मूल्य मिलता है। घरेलू खपत के अतिरिक्त विदेशों में भी इनकी मांग है। पूसा बासमती 1, पूसा सुगंधा, पूसा 1121, उन्नत तरावणी और पूसा संकरधान 10 को इन क्षेत्र में उगने के लिए संस्तुत किया गया है।

(2) अरहर द्वारा प्रतिस्थापन : जिन क्षेत्रों में जहाँ बरसात का पानी एकत्रित न होता हो अरहर की शीघ्र पकने वाली (120–150 दिन) जातियों को धान के स्थान पर उगाया जा सकता है। यदि अरहर को मेड़ों पर उगाया जाए तो पैदावार और अधिक मिलती है। अरहर की शीघ्र पकने वाली जातियों में प्रमुख हैं यू.पी. ए.एस–120, मानक, सागर, पूसा 33, पूसा 9 और पूसा 855। अरहर से 15–20 क्विं/हेक्टे. की पैदावार मिल जाती है और गेहूँ की अगली फसल में 30–40 कि. नाइट्रोजन/हेक्टे कम लगानी पड़ती है।

(3) मक्का द्वारा प्रतिस्थापन : धान के स्थान पर जहाँ पानी न भरता हो मक्का उगाया जा सकता है। अच्छा तो रहे यदि इसको मेड़ों पर बोया जाए। मक्का के साथ उड़द, मूँग, लोबिया और सोयाबीन को अंतः फसल के रूप में लगाने पर और अधिक उत्पादन मिल जाता है।

6

मलेरिया-वाहक के रोकथाम की अद्यतन उपलब्धियाँ

• प्रो. नीरा कपूर

मच्छरों की बहुत सी जातियाँ परजीवी–वाहक रोगों के लिए उत्तरदायी हैं। पीत ज्वर, डेंगू ज्वर, मलेरिया और फाइलेरिया इनमें प्रमुख हैं। भारत में मलेरिया एक मुख्य जन–स्वास्थ्य समस्या है। प्रतिवर्ष इसके 2.5 मिलियन मामलों की पुष्टि की जाती है। अफ्रीका तथा एशिया महाद्वीप के प्रायः उष्णकटिबंधीय व उप–उष्णकटिबंधीय देशों में इसका प्रभाव अत्यंत अधिक है।

मलेरिया मुख्यतः प्रोटोजोआ संघ (फ़ाइलम) के *प्लैज़मोडियम वाइवैक्स व प्लैज़मोडियम फैल्सीपेरम* परजीवी द्वारा भारत में फैलता है। यह परजीवी भारत में मुख्यतः ऐनोफिलीज़ की छह जातियों द्वारा फैलता है जोकि मलेरिया के प्रारंभिक वाहक हैं जैसे कि ऐनाफेलीज़ क्यूलीसिफेसीज, ऐनोफेलीज़ स्टिफन्साई, ऐनोफेलीज़ फ्लूविटेलिस, ऐनोफेलीज़ मिनीमस, ऐनोफलीज़ डायरस तथा ऐनोफेलीज़ सनडेक्स मुख्य हैं।

मलेरिया बहुत से कारणों द्वारा फैलता है जिसमें मौसम, शहरीकरण, सामाजिक व आर्थिक कारण, कृषि पद्धतियों तथा सांस्कृतिक कारण मुख्य हैं।

मलेरिया के परजीवी–वाहक मच्छरों की रोकथाम पुराने समय में मुख्यतः डी.टी.टी. पाउडर द्वारा की जाती थी पर इस कीटनाशी का प्रयोग बंद अब कर दिया गया है। इस कीटनाशी के अवशेष दूध, मांस तथा अंडों में विद्यमान हो जाने के कारण यह समस्त जनजीवन के लिए हानिकारक हो गया और गुज़रते समय के साथ ऐनोफेलीज़ मच्छरों में इस कीटनाशक के लिए प्रतिरोध भी उत्पन्न हो गया जिसके कारण इनका प्रयोग बंद कर दिया गया।

मलेरिया में मादा ऐनोफेलीज़ मच्छर उचित मात्रा में रक्त की खुराक लेकर अपने अंडों को परिपक्व करती हैं। काटते समय मच्छर अपनी लार से एक ऐसा रासायनिक द्रव छोड़ते हैं जो रक्त में प्रवाहित हो जाता है और जब यही लार उस मच्छर द्वारा (जिसमें परजीवी होता है), स्वस्थ मच्छर में छोड़ी जाती है जो उसका शरीर भी परजीवी द्वारा संक्रमित हो जाता है जिसके फलस्वरूप यह संक्रमण संक्रमित व्यक्ति से स्वस्थ मनुष्यों में फैल जाता है। यदि उचित रोकथाम न की जाए तो ये ही वाहक जनित रोग प्राकृतिक विपदाओं में महामारी का रूप धारण कर सकते हैं।

मलेरिया के मच्छरों का संपूर्ण निदान तो अत्यंत कठिन है क्योंकि इनके पनपने के आवास अनगिनत हैं जिनके बारे में अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। आवास की जानकारी के बाद भी इन मच्छरों की रोकथाम पूर्ण रूप से नहीं हो सकती।

इस बीमारी की संपूर्ण जानकारी तथा इसके विरुद्ध बचाव के तरीकों की समझ से ही इसका निदान हो सकता है। मच्छरों के अतिक्रमण से बचने के लिए कुछ

761 HRD/13—7A

ऐसी विधियों को प्रयुक्त किया जा सकता है जो व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करें।

मच्छरों के प्रति शारीरिक सुरक्षा के विभिन्न तरीके अपनाएं जा सकते हैं। जैसे कि:

(1) भौतिक सुरक्षा : भौतिक विधियों में, मच्छरदानियाँ, घरों में जालीदार खिड़कियाँ, मच्छर से बचने के लिए उचित वस्त्र तथा परदे शामिल हैं।

(2) रासायनिक सुरक्षा : रासायनिक विधियों में मच्छरों को भगाने वाला तेल, मच्छररोधी कॉइलें, मच्छर–रोधी अगरबत्तियाँ, मैटस तथा ऐरोसोल फुहारक शामिल हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के प्रयासों के द्वारा मलेरिया के मामलों में भारी कमी आई है। फिर भी भारत के उत्तरपूर्वी राज्यों में यह एक प्रमुख जन–स्वास्थ्य समस्या के रूप में उभर रहा है। हमें मलेरिया के प्रति कुछ ऐसे उपाए करने पड़ेंगे जो नए ढंग के हों और जिनसे पर्यावरण को प्रदूषण से बचाया जा सके और जिनके प्रयोग से परजीवी–वाहकों में प्रतिरोध भी उत्पन्न न हो।

इन नवीन उपायों का एकमात्र केंद्र बिंदु है एकीकृत पीड़क (पेस्टिसाइड) प्रबंधन जो सब उपायों का समन्वय और समावेश है। कुछ नए तरीके भी हैं जिन पर अभी शोध चल रहा है। लेकिन इनसे संबंधित प्रारंभिक आँकड़ों से इनके सफल होने का आभास होता है, जैसे कि:

1. बैसिलस थरिंजिएन्सिस : यह एक तरह का जीवाणु है जोकि क्राइ (cry) नामक एक ऐसे प्रोटीन का उत्पादक है जो मच्छरों के लिए हानिकारक है। यदि मच्छर कुछ ऐसे पदार्थों को ग्रहण करते हैं जिनमें क्राइजीन हो तो वे उससे अंतर्ग्रहीत अंतर्विष से मर सकते हैं। यह तरीका मुख्यतः डिप्टेरा जाति के रक्त चूसने वाले मच्छरों के लिए प्रभावशाली है, और उनका वातावरण में कोई दुष्परिणाम भी नहीं होता।

2. मेटारिज़ियम ऐनिसोप्लाई : यह एक फफूंद का नाम है जोकि बहुत ही प्रभावशाली ढंग से घर में मौजूद ऐनोफेलीज़ मच्छरों को मार देता है। इस तरीके को तनज़ानिया में एक शोध के दौरान अपनाया गया जिसमें यह पाया गया कि इस फफूँद को जहाँ लगा दिया जाए, वहां मच्छरों की संख्या कम हो जाती है।

3. मच्छर–नाशी विषाणु : यह एक नवीनतम उपाए है और अभी इस पर शोध चल रहा है। यह विषाणु मच्छर की आंत को भेद देता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। यह हर जाति के लिए प्रभावकारी है, अतः इसे आसानी से प्रयोग में लाया जाता है।

4. गंध प्रलोभक : विभिन्न प्रकार के गंध प्रलोभकों के उपयोग से मच्छरों को आकर्षित करके उन्हें पकड़ा जा सकता है जिससे कि उनकी संख्या में भारी कमी आ सकती है।

5. आनुवंशिकतः आपरिवर्तित कीट : आधुनिक समय में जीन–आपरिवर्तित कीट आनुवंशिक रूप से तैयार किए जा सकते हैं। इसके अंतर्गत एक कीट से जीन लेकर उन्हें दूसरे कीट के डी.एन.ए. में प्रवेश करवा कर एक नई विशेषता वाला कीट निर्मित कर सकते हैं जोकि एक नई जाति होगी। ये मच्छर अपने अंदर परजीवी को पनपने नहीं देते क्योंकि इनमें प्रभावी (इफेक्टर) जीन होती है। यद्यपि यह तकनीक अभी शोध के अधीन है लेकिन इस प्रभावशाली तकनोक के लाभों से हम इनकार नहीं कर सकते। आनुवंशिक रूप से आपरिवर्तित मच्छर अनुसंधानकर्त्ताओं के लिए एक वरदान के समान हैं, जोकि मलेरिया नहीं फैला सकते।

6. घरों की बनावट तथा स्वच्छ वातावरण : घरों के अंदर जालीदार खिड़कियाँ, छज्जे, कीटनाशी–युक्त परदे, कीटनाशी संसेचित मच्छरदानियाँ लाभकारी उपाए हैं बशर्ते इन्हें बुद्धिमत्ता के साथ प्रयोग में लाया जाए। स्वास्थ्यकर्त्ताओं के द्वारा जानकारी का प्रसार,

761 HRD/13—7B

समय–समय पर कूलरों, नालियों तथा गड्ढों में कीटनाशियों का उपयोग व छिड़काव परजीवी व वाहकों की संख्या में काफी हद तक कमी ला सकता है।

7. दीर्घकालीन कीटनाशी युक्त मच्छरदानियाँ : ये मच्छरदानियाँ संश्लेषित पायरेथ्रॉइड द्वारा संसेचित हैं। इनमें कीटनाशी को या तो मच्छरदानियों के अंदर डाला जाता है ता उसे बहुलक (पॉलिमर) की सहायता से मच्छरदानियों पर लगाया जाता है। बीस बार धुलने के बाद भी इन मच्छरदानियों में कीटनाशी की मात्रा कम नहीं होती। इनका जीवन–काल 4–5 वर्ष है ये मच्छरों को अपने ऊपर बैठने नहीं देतीं, और यदि मच्छर बैठ भी जाते हैं तो वे मूर्छित हो कर मर जाते हैं। राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान केंद्र द्वारा गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश में इस का वितरण किया गया जिसके फलस्वरूप उस क्षेत्र के गाँवों में मलेरियों के मामलों में भारी कमी आई है। ऑलिसेट नामक मच्छरदानी तो 5 साल के बाद भी मलेलिया के वाहकों के विरुद्ध अत्यंत प्रभावशाली बनी हुई है। 2003–04 में खंडेरा नामक गाँव में **प्लैज़मोडियम फैल्सीपेरम** के 11 मामलों की पुष्टि की गई थी। परंतु आज वहाँ कोई भी फैल्सीपेरम का मामला सामने नहीं आया।

इन मच्छरदानियों का मानव जाति पर कोई भी दुष्परिणाम नहीं पाया गया और यह प्रदूषण–रहित भी हैं। इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि यह अत्यंत सरल, कम लागत वाला एक टिकाऊ उपाय है।

यदि हमें परजीवी वाहकों के प्रकोप से बचना है तो उपर्युक्त तरीकों का उपयोग बुद्धिमत्ता से करना पड़ेगा क्योंकि ये सब उपाए एक दूसरे के पूरक हैं। यह भी ध्यान रखने योग्य है कि हर नई जगह में मलेरिया नियंत्रण के उपाए अलग–अलग ढंग से प्रयुक्त होंगे। इस के लिए शोधकर्त्ताआं एवं स्वास्थ्यकर्त्ताओं को उस जगह के अनुसार ऐसे उपयुक्त उपायों को प्रयोग में लाना होगा जोकि वहाँ के वातावरण के अनुकूल हों।

मलेरिया की रोकथाम प्रत्येक राज्य का प्रमुख उत्तरदायित्व है। आम जनता की भी मलेरिया रोकथाम क्षेत्र में भागीदारी की आवश्कता है। जनता में मलेरिया के प्रति जागरूकता व लोगों द्वारा अपने–अपने घरों, क्षेत्रों में मच्छरों को न पनपने देना मलेरिया–रोकथाम में काफी हद तक सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

7

मानव स्वास्थ्य व अंगूर

• *डॉ. आर.एस. सेंगर एवं विवेकानंद प्रताव राव*

इन दिनों बाजार में अंगूर की बिक्री देख बरबस ही बच्चों तथा बड़ों का मन अंगूर खाने की ओर आकर्षित हो जाता है। हो क्यों न यह फल लोगों के लिए गुणकारी होने के साथ–साथ स्वास्थ्यवर्धक भी होता है। इसलिए इन दिनों इसका सेवन कर लाभ उठाया जा सकता है। अंगूर की उत्पत्ति सबसे पहले किस देश में हुई कुछ कहा नहीं जा सकता है। वनस्पति विशेषज्ञों का विचार है कि सबसे पहले अंगूर की उत्पत्ति एशिया के 'काकेशस' में होती थी। मुस्लिम आक्रमणकारियों के साथ 1300 ई. में ईरान और अफगानिस्तान से अंगूर भारत पहुंचा। इतिहासकारों के अनुसार 3000 से 4000 ई. पूर्व मिस्र में अंगूरों की खेती होती थी। आजकल फ्रांस, अमेरिका, अफ्रीका एवं एशिया के कई देशों में इसकी खेती होती है। काबुल, कंधार के अंगूर विश्वभर में सबसे स्वादिष्ट व गुणकारी माने जाते हैं। भारत में जम्मू–कश्मीर, हरियाणा, गुजरात, पंजाब, हिमाचल प्रदेश में खूब अंगूर उगाए जाते हैं। महाराष्ट्र में अंगूर की खेती की जाती है। अनेक प्रदेशों में अंगूर से शराब बनाई जाती है।

वानस्पतिक परिचय

विभिन्न प्रदेशों में अंगूर को 'विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। संस्कृत में अंगूर को द्राक्षा तथा मधुरस कहते हैं। तमिल में कडिंमडि, कोडि मुंदरी, तेलुगु में द्राक्षा पेड़ी, द्राक्षा पेड़, मराठी में काली द्राक्ष, गुजरात में द्राख, अरबी में हबुस तथा फारसी में मुनक्का कहते हैं। लैटिन में वाइटिस विनिफेरा और अंग्रेजी में ग्रेप्स कहते हैं। अंगूर विदेशी जाति का फल है। ये शीत ऋतु में पकने लगते हैं। अंगूर, काले व बैंगनी रंग के होते हैं। काले और बैंगनी रंग के अंगूर अधिक मधुर, रक्तशोधक व स्वादिष्ट होते हैं। द्राक्षा अंगूरों से मुनक्का और किशमिश बनाई जाती है। बेदाना द्राक्ष में बीज नहीं होते हैं।

रासायनिक संघटन

अंगूर में जल की मात्रा सबसे अधिक होती है। विशेषज्ञों के अनुसार अंगूर में 75 प्रतिशत जल होता है। प्रोटीन 8 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 10.2 प्रतिशत, वसा 0.1 प्रतिशत, अम्ल 0.43 प्रतिशत तथा शर्करा 18 प्रतिशत होती है। इनके अतिरिक्त 100 ग्राम अंगूर में विटामिन 'ए' 5 प्रतिशत, विटामिन 'सी' 3 प्रतिशत, 13 प्रतिशत कैलोरी ऊष्माशक्ति होती है। अंगूर में शर्करा की अधिकता होने के कारण इससे ग्लूकोज बनाया जाता है जो बहुत शक्तिवर्धक होता है।

अंगूर के गुण

अंगूर मधुर रस, अम्ल से युक्त, शीत, पित्त विकार नाशक, अरुचि, दाह को नष्ट करता है। अंगूर स्वादिष्ट, रुचिकर और क्षुधावर्द्धक अर्थात् भूख को बढ़ाने वाला होता है। अंगूर के सेवन से पाचन शक्ति तेज होती है। अंगूर कोष्ठबद्धता को नष्ट करके अर्श रोग में लाभ पहुंचाता है। रक्त की उष्णता को नष्ट करके चर्म रोगों

से सुरक्षित रखता है। अंगूर के सेवन से प्यास शांत होती है। हृदय को बहुत शक्ति मिलती है। रोगी को अल्प मात्रा में अंगूर खिलाए जाने चाहिए क्योंकि अंगूर विरेचक होते हैं और अतिसार उत्पन्न करते हैं। कच्चे अंगूर शीतल और रूक्ष होते हैं। इनके सेवन से अमाशय और प्लीहा को हानि पहुंचती है। इससे वायु–प्रकोप बढ़ता है। यूनानी चिकित्सकों के अनुसार अंगूर दूसरे दर्जे का गर्म फल होता है। अंगूर रोचक, मधुर और पाचन शक्ति को तीव्र करते हैं। रक्त को शुद्ध करने के साथ रक्त की वृद्धि भी करते हैं। अंगूरों के सेवन से नेत्र–ज्योति भी बढ़ती है। अंगूर के सेवन से शुक्र में वृद्धि तथा मूत्राशय की जलन भी नष्ट होती है। वक्षस्थल में रुका बलगम (कफ) अंगूरों के सेवन से निष्कासित होता है।

अंगूर के लाभकारी औषधीय उपयोग

1. मुनक्के को दूध में उबालकर पीने से शारीरिक क्षीणता नष्ट होती है।
2. अंगूर की बेल के 25 ग्राम पत्तों को जल से धोकर, सिल पर पिसकर, जल में मिलाकर छानकर पीने से वृक्क (गुर्दे) का शूल नष्ट होता है।
3. अंगूर और मिश्री खाने से ग्रीष्म ऋतु में उष्णता के तीव्र प्रकोप से सुरक्षा होती है।
4. अंगूरों में 'विटामिन सी' अधिक मात्रा में होता है। प्रतिदिन 100 ग्राम या अधिक अंगूर खाने से स्कर्वी रोग से सुरक्षा होती है।
5. प्रतिदिन भोजन के बाद अंगूर खाने से स्त्रियों में ऋतुस्राव की विकृतियां नष्ट होती हैं।
6. अंगूरों का सेवन करके गाय का दूध पीने से शारीरिक उष्णता नष्ट होती है और मस्तिष्क को शक्ति मिलती है।
7. कोष्ठबद्धता से पीड़ित रोगी को चार–पांच मुनक्कों के बीच काला नमक भरकर, हल्का–सा गर्म करके सेवन करने से बहुत लाभ मिलता है। मुनक्का खाकर गर्म दूध पीने से कोष्ठबद्धता शीघ्र नष्ट हो जाती है।
8. मुनक्के को जल में उबालकर क्वाथ (काढ़ा) बनाकर पीने से अजीर्ण और कोष्ठबद्धता शीघ्र नष्ट होती है।
9. अंगूर की बेल की लकड़ी को जलाकर राख बनाकर, सिरके में मिलाकर, कुत्ते के काटने व विष के डंक मारने के स्थान पर लगाने से विष का प्रभाव नष्ट होता है।
10. 100 ग्राम अंगूरों को रात में जल डालकर रखें। प्रातः उठकर उन अंगूरों को मसलकर उसमें जीरे का चूर्ण डालकर सवेन करने से पित्त विकृति से उत्पन्न दाह नष्ट होती है।
11. अंगूर और मुलहठी को जल में उबालकर क्वाथ बनाकर पीने से अधिक प्यास से मुक्ति मिलती है।
12. अंगूर और सौंफ 10–10 ग्राम मात्रा में लेकर रात को जल में डालकर रख दें। प्रातः उठकर दोनों को मसलकर, छानकर पीने से अम्लपित्त की विकृति नष्ट होती है।
13. प्रमेह रोग की विकृति में अंगूर, मधु और शर्करा मिलाकर सेवन करने से बहुत लाभ होता है।
14. अंगूर और अडूसे को जल में उबालकर क्वाथ बनाएं। इस क्वाथ को छानकर पीने से अनेक प्रकार के शूलों का निवारण होता है।
15. काले अंगूरों को जल में उबालकर क्वाथ बनाकर पीने से मूत्रकृच्छविकृति नष्ट होती है।
16. अंगूरों और धनिए को रात को जल में डालकर रखें। प्रातः उठकर दोनों को मसलकर, छानकर पीने से आधासीसी की शिरोवेदना नष्ट होती है।
17. अंगूर की बेल काटने पर उसमें से जो रस निकलता है उसे चर्म रोग पर लगाने से बहुत लाभ होता है।
18. अंगूर का शर्बत जल में मिलाकर पीने से उष्णता का

761 HRD/13—8A

प्रकोप नष्ट होता है। ग्रीष्म ऋतु में प्यास कम लगती है पसीना भी कम आता है।

अंगूर के शर्बत की निर्माण विधि निम्नलिखित है:–

तीन कि.ग्रा. अंगूर को स्वच्छ जल से धोकर उनका रस निकाल लें। फिर डेढ़ कि.ग्रा. चीनी को जल में उबालकर चाशनी बनाएं। जब डेढ़ तार की चाशनी बनने लगे तो उसमें रस भी मिलाकर थोड़ी देर उबालकर आग से उतार लें। इस शर्बत को शीतल होने पर बोतलों में भरकर रखें।

अंगूरों से निर्मित अंगूरासव प्रतिदिन 15–20 मिलिग्राम की मात्रा में भोजन के बाद, समान मात्रा में जल मिलाकर पीने से खांसी, श्वास, कंठ और शारीरिक क्षीणता नष्ट होती है। कोष्ठबद्धता का निवारण होता है।

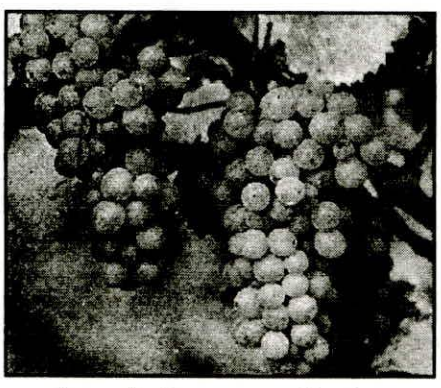

सेहत के लिए लाभकारी अंगूर

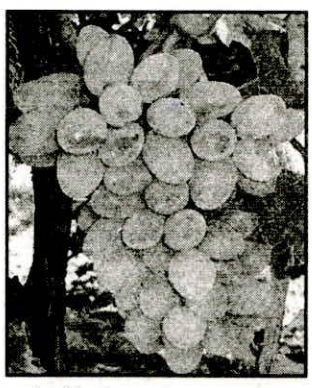

अंगूरों से भरा हुआ अंगूर का गुच्छा

काले अंगूर की खेती

761 HRD/13—8B

8

रक्तदाब नापने का इतिहास

• डॉ. जे.एल. अग्रवाल

हृदय से धमनियों के द्वारा रक्त प्रवाहित होता है, जिससे शरीर के सभी अंगों को ऑक्सीजन तथा पोषक तत्वों की आपूर्ति होती है। ऊतकों में उत्पन्न कार्बन डाईऑक्साइड और अन्य तत्व रक्त में मिलते हैं जोकि शिराओं द्वारा हृदय में पहुंचते हैं। सुचारु रूप से रक्त–प्रवाह के लिए रक्त संचार तंत्र में दबाब होता है। यह विभिन्न हिस्सों में हृदय की संकुचन अवस्था के कारण बदलता रहता है। वयस्कों में सामान्य **सिस्टोलिक रक्त दाब** 100 से 130 मि.मि. मरकरी और **डायस्टोलिक रक्त चाप** 60 से 80 मि.मि. मरकरी होता है। रक्त दाब घटने बढ़ने के गंभीर दुष्परिणाम हो सकते है। चिकित्सक से परामर्श करने पर वह परीक्षण के साथ की रक्तदाब भी नापते है।

रक्त दाब मापने की मशीन, जो रक्तदाबमापी (स्फिगमो मैनो मीटर) कहलाती है, से सभी परिचित होंगे पर इसकी खोज का इतिहास अनेक रुचिकर हादसों से जुड़ा है। आधुनिक चिकित्सा जगत के प्रणेता हिप्पोक्रेटीज के अनुसार मानव शक्ति में तीन संस्थान मस्तिष्क और स्नायु संवेदनाओं, सोच, धमनियों में जीवन प्रदान करने वाली शक्ति, यकृत और शिराएं पोषण और विकास के लिए जिम्मेदार होती हैं। ग्रीक वैज्ञानिक **गैलेन** ने संभवतः पहली बार कहा कि मानव शरीर में रुधिर परिसंचरण तंत्र होता है। धमनियों में शरीर को चलाने वाली ऊर्जा **न्यूमा** (Pneuma) या एक वायु होती है। उनका मत था कि हृदय एक फव्वारे सदृश्य होता है जिससे निरंतर वायु (न्यूमा) रुधिर परिसंचरण तंत्र में पहुंचती रहती है। सन् 1616 में **विलियम हार्वे** ने गैलेन के विचार को गलत बताया। उनके अनुसार शरीर में एक निश्चित मात्रा में रक्त होता है जो एक दिशा में बहता है। उनके मत का उस समय काफी विरोध हुआ, क्योंकि उस समय लगभग हर बीमारी के उपचार के लिए रक्त को जोंको द्वारा चुसवाने की प्रथा थी।

रक्तदाब को पहली बार सन् 1733 में स्टीफन हेलस ने घोड़ो में नापा। उन्होंने घोड़े की धमनी में शीशे की नली डालकर उसको ट्यूब से जोड़ा और पाया कि रक्त ट्यूब में ऊपर नीचे होता है और माना कि यह दबाव घटने–बढ़ने के कारण होता है। पर यह विधि मानव के रक्त चाप को नापने के लिए उपयुक्त नहीं थी।

सन् 1847 में फैवरे ने हाथ काटने का ऑपरेशन करते समय पहली बार मानव के रक्तदाब को नापा। इन्होंने धमनी में ब्रास कैनुला डालकर रक्तचाप को लुडविग द्वारा बनाए गए कायामोग्राम पर रिकार्ड किया। जानवरों में रिसर्च के लिए या मानव में ऑपरेशन के दौरान धमनी को काटकर उसमें कैनुला डालकर रक्तदाब अभी भी मापा जाता है। बगैर ऑपरेशन के रक्त चाप नापने की विधि खोजने के प्रयास होते रहे। सन् 1855 में कार्ल विवरो ने खोजा कि पर्याप्त दबाब से धमनियों के रक्त–प्रवाह को रोका जा सकता है। इस विधि से रक्त दाब नापने के लिए उन्होंने स्पंदनलेखी स्फेगमोग्राफ बनाया। इसमें बांह पर फैल सकने वाला बल्ब था जिसमें पानी या मरकरी भर कर रक्त प्रवाह बंद किया जा सकता था। ट्यूब से मैनोमीटर जुड़ा होता था। इनका यंत्र 168 से.मी. लंबा था, तथा इसके परिणाम भी भिन्न–भिन्न होते थे।

जूल्स मेरी ने सन् 1860 में ऐसा स्पंदन लेखी (स्फिगमोग्राफ) बनाया जिससे नाड़ी की गति नापी जा सकती थी पर रक्तदाब सही ढंग से नहीं नापा जा सकता था। सन् 1882 में **रॉबर्ट एलिस डूजन** ने इसमें सुधार किए जिससे इनका उपयोग सरल हो गया। 1881 में सैमुअल सीगफ्रीड कार्ल रिटर वॉन बैंस ने स्पंदन मापी (स्फिगमोमीटर) का आविष्कार किया। इसमें पानी या पारे से भरी रबर की गेंद होती थी। इसको कलाई पर रखकर दबाब बढ़ाया जाता था जिसको दाबमापी (मैनोमीटर) से जोड़ा गया था। जब कलाई की नाड़ी की धड़कन बंद हो जाती थी तो दबाब रिकार्ड किया जाता था। सन् 1889 में पोटेन ने इसमें सुधार किया और पानी या पारे के स्थान पर दबाब देने के लिए हवा का इस्तेमाल किया। इससे रक्तचाप ज्यादा सही रिकार्ड होने लगा। आज इसी विधि का इस्तेमाल किया जाता है। उस समय रक्तदाब की महत्ता का ज्ञान नहीं था। इन उपकरणों के अनेक विरोधी थे क्योंकि उनकी मान्यता थी कि रक्तदाब मापने की कोई आवश्यकता नहीं है। सन् 1896 में इटली के **सिपिओन रिवा रॉकी** ने पहला पारद रक्तदाबमापी (मरकरी स्फिगमोमैनोमीटर) विकसित किया। कमोबेश उसी तरह के उपकरण का अब भी उपयोग रक्तदाब मापने में होता है। इसमें फैलने वाले बैग (कफ) को बांह में बाहु (ब्रेकियल) धमनी से रक्त प्रवाह रोकने के लिए बाँधा जाता था और इसको मरकरी भरी काँच नली से जोड़ा गया था। जब बाहु धमनी से रक्त प्रवाह बंद हो जाता था तो वह रक्त दाब रिकार्ड किया जाता है।

अमेरिका के न्यूरोसर्जन **हारवेकुशिंग हारवी कशिंग** ने इटली के दौरे के समय रिवा रॉकी का उपकरण देखा और उसमें सुधार किए जिससे इसका उपयोग आसान हो। सन् 1901 में आधुनिक रक्तदाबमापी का उपयोग चिकित्सकों द्वारा व्यापक रूप से होने लगा। पर इस विधि से केवल प्रकुंचनी (सिस्टोलिक) रक्तदाब (ऊपर वाला) ही नापा जा सकता था। सन् 1901 में रीक्लि हान्सेन ने कफ की चौड़ाई 5 से.मी. से बढ़ाकर 12 से.मी. की जिससे रक्त दाब की नाप ज्यादा सही ढंग से होती है। इसी चौड़ाई का कफ अब इस्तेमाल किया जाता है।

सन् 1905 में रूस के युवा शल्य चिकित्सक **निकोलाई कॉरटोकॉक** ने धमनियों में दबाब पड़ने से रक्तप्रवाह में रुकावट होने से उत्पन्न ध्वनियों को सुना। उन्होंने पाया कि कफ में दबाब बढ़ाने या घटाने पर विशिष्ट ध्वनि होती है। इन ध्वनियों को उन्हीं के नाम पर अब भी **कॉरटो कॉफ साउन्ड** कहा जाता है। इन धमनियों को स्थेटेस्कोप से सुनकर प्रकुंचनी (सिस्टोलिक) और अनुशीथिल (डायस्टोलिक) दोनों रक्त चाप नापे जा सकते हैं। इसी विधि का आज तक उपयोग किया जाता है। विकास के साथ ही अब ज्यादा सही ढंग से रक्तदाब मापने वाले रक्तदाब तथा अन्य डिजिटल मॉडल उपलब्ध हैं।

सन् 1974 से पैनासोनिक कंपनी ने पहला अंकीय दोलनभितीय (डिजिटेल आस्लीओमीटरिक) विधि से रक्तदाब मापने वाला यंत्र बाजार में पेश किया। इस विधि में कफ के दबाब के कारण धमनियों में उत्पन्न तरंगों को रिकार्ड करके रक्तदाब मापा जाता है। अब रक्तदाब को अंगूठे में सेन्स लगाकर भी रिकार्ड किया जा सकता है। विकृतिमापी (स्ट्रेनगेज) प्रकाश कोशिका (फोटो सेल), अर्द्धचालक, (सेमीकन्डक्टर), अल्ट्रासाउन्ड तकनीकों से भी रक्तदाब मापा जा सकता है। पर मरकरी मैनोमीटर से प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा मापा गया रक्तदाब ही पूर्णतः विश्वसनीय होता है। रक्तदाब की माप अब हर व्यक्ति को नियमित अंतराल पर करवानी चाहिए, जिससे उच्च रक्तदाब की पूर्व अवस्था में या शुरूआती अवस्था में इसका निदान हो और परहेज या उपचार द्वारा इस पर प्रभावी नियंत्रण कर इसके दुष्प्रभावों से बचाव हो। उच्च रक्तचाप के प्रति जागरुकता तथा इसके नापने की विधि के लिए इसके शुरुआती आविष्कारकों–हेल्स लुडविंग, वॉन बैस, रिवा रॉकी, विलियम कशिंग, कॉर्टोकॉफ इत्यादि वैज्ञानिकों के हम सदैव ऋणी रहेंगे।

ooo

9

कॉफी : एक अंतरराष्ट्रीय पेय

• *जगनारायण*

आधुनिक पेय पदार्थों में कॉफी एक बहुप्रयोगी पेय है। यह काम के बोझ से आई थकावट को मिटाकर नई उर्जा और तरोताजगी का आसान स्रोत है। कॉफी आज दुनिया भर में बड़े चाव से पी जाती है। दफ्तर के काम–काज के तनाव और आज की भाग–दौड़ भरी दैनिक दिनचर्या में थकावट और तनाव में एक प्याली कॉफी किसी को भी ताजगी से भर देती है। छात्रों के लिए परीक्षा के दिनों में रात--रात भर जाग कर पढ़ाई करने में यह एक मददकारी पेय है। दफ्तर के बाबुओं और अधिकारियों को थकान और फाइलों की उलझन में कॉफी का प्याला नई ऊर्जा और ताजगी भर देता है। कॉफी की चंद चुस्कियों के बाद दिमागी काम करने वाले लोग दुबारा तरोताजा होकर, नई ऊर्जा और उत्साह के साथ अपने काम को अन्जाम देने में सक्षम हो जाते हैं।

परिचय

कॉफी या कहवा सारी दुनिया में पीया जाने वाला पेय है। मेहमानवाजी में चाय के बाद कॉफी ही विशेष रूप से प्रयुक्त होती है। यह ठंडी और गरम दोनों रूप में पी जाती है। कॉफी, कहवा नामक वृक्ष के फल के बीज को विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजार कर कूटने–पीसने के बाद उससे प्राप्त पाउडर से बनने वाला पेय है। कॉफी का फल एक झाड़ीनुमा पौधे की उपज है। यह 'रूबिएसी' कुल की वनस्पति है। इस वंश में मुख्यतः तीन मुख्य जातियां होती हैं जो इस प्रकार हैं–

1. अरबी कॉफी या कॉफिया अरेबिका
2. कौंगो कॉफी या कॉफिया रोबस्टा
3. लाइबेरियन कॉफी या कॉफिया लाइबेरिका, कॉफिया एक्सेल्सोइडीज।

कॉफी का पौधा समुद्र स्तर से लेकर 1.850 मीटर की ऊँचाई तक इस पृथ्वी पर कर्क रेखा से मकर रेखा के बीच उपोष्ण पट्टी वाले क्षेत्र में उगाया जाता है।

रूबिऐसी कुल की इस वनस्पति की पच्चीस मुख्य जातियां मिलती हैं। पीने के लिए कॉफी की अरेबिका और रोबास्टा नामक दो जातियां ही प्रयोग में लाई जाती हैं।

अरेबिका जाति की कॉफी का पौधा हरे रंग का सदाबहार होता है। यह 4 से 6 मीटर तक ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ अंडाकार होती हैं। रोपे जाने के बाद पौधों में चार साल में फल लगने लगते हैं। यद्यपि इस जाति की कॉफी के पौधों में 50 वर्षों तक फल लगते हैं, लेकिन तीस वर्ष की आयु के बाद इसके पौधे की फसल घटने लगती है।

काफी का पाउडर

कॉफी के बीजों को पाउडर में बदलने का काम दो तरीकों से किया जाता है। कॉफी के बीज से पाउडर बनाने का सबसे आसान और सस्ता तरीका 'सूखा तरीका' कहलाता है। इस पद्धति से बनने वाली कॉफी को प्राकृतिक कॉफी भी कहते हैं। कॉफी निर्माण की यह प्राकृतिक प्रक्रिया विशेषकर ब्राजील और पश्चिम अफ्रीका

में प्रयोग की जाती है। इस विधि में सबसे पहले पेड़ से संग्रहीत कॉफी के फलों की कच्ची, पक्की और कटी–फटी बोरियों को अलग करके साफ कर लिया जाता है। इस प्रकार कॉफी–निर्माण के लिए अनुपयोगी और बेकार तत्वों को छाँटकर हटा दिया जाता है। इसके बाद इकट्ठी की गई कॉफी की साफ–सुथरी बेरियों को कंक्रीट या ईंट के फर्श पर कमर तक ऊँची ट्रेसल में चटाइयों पर फैलाकर धूप में सुखाया जाता है। कॉफी की तैयारी में इस प्रकार सुखाया जाना एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

कॉफी–निर्माण का दूसरा तरीका गीला तरीका है। इस प्रकार से बनने वाली कॉफी निर्माण का तरीका मध्य अमेरिका, मैक्सिको, कोलम्बिया, केन्या और तंजानिया जैसे कॉफी– उत्पादकों देशों में अपनाया जाता है। कॉफी तैयार करने के सूखे तरीके की तुलना में यह तरीका अधिक खर्चीला है। इस माध्यम से कॉफी तैयार करने में विशेष सावधानी की भी जरूरत रहती है। तैयार कॉफी की गुणत्ता उच्च स्तरीय होती है। इस कॉफी को 'ग्रीन कॉफी' कहते हैं। सूखे तरीके से तैयार कॉफी की तुलना में इस कॉफी की कीमत अधिक होती है।

कॉफी के रासायनिक संघटक

कॉफी के रासायनिक संघटक अत्यंत जटिल होते हैं। इनमें कुछ पर भूनने का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता। दूसरे यौगिक इसकी सुगंध से संबंध रखते हैं, जो कच्चे हरे फलों के भूने जाने पर उनके फूटने या तड़कने से बनते हैं। गरम पानी में डालने पर जो यौगिक इससे निकलकर बाहर आते हैं उन में प्रमुख – कैफीन, ट्रिगोनेलीन, क्लोरोजेनिक अम्ल, ऐमीनो अम्ल, कार्बोहाइड्रेट आदि हैं। कॉफी में पाए जाने वाले कुछ खनिज तथा अन्य वाष्पशील यौगिक इस प्रकार हैं– कार्बनिक अम्ल, ऐल्डिहाइड, कीटोन, एस्टर, एमीन और थापोल। कॉफी से सक्रियता इसमें मौजूद ऐल्हिाइड, कैफीन से पैदा होती है जो मूलतः एक हल्का उत्तेजक है।

गुणता जाँच

तैयार कॉफी पाउडर की गुणता का परीक्षण कर उसकी श्रेणी का निर्धारण एक अहम् काम है। इस जाँच में जाँचकर्ता को कॉफी की मिठास, उसका स्वाद, गंध तीखेपन के साथ ही उसके सभी तरह के तात्कालिक प्रभाव को बारीकी से परखना पड़ता है। कॉफी को चखकर उसके गुण–दोष की जाँच करने वाले व्यक्ति को अत्यंत अनुभवी होना चाहिए। कॉफी में तीखापन उसमें पाए जाने वाली अम्लीयता के कारण होता है। यह कॉफी का वांछित गुण है। तैयार कॉफी को चखकर उसके गुण दोष की समीक्षा करने वाला व्यक्ति जब कॉफी को अपनी जुबान पर रखता है तो उसे अपने जीभ के किनारों और तालू के अंत में एक सूखेपन की अनुभूति होती है। कॉफी की जाँच में पाए जाने वाले चिपचिपेपन, भारीपन और गाढ़ेपन के साथ ही कॉफी के स्वाद को एक अनुभवी व्यक्ति ही पहचान सकता है। भरा–भरा अहसास कराने वाली कॉफी में जब दूध मिलाया जाता है तब भी वह अपना असली स्वाद नहीं छोड़ती। मुँह में कॉफी के सुवास से मिला स्वाद, उसके फ्लेवर की विशेषता के बाद तुरंत बता देता है।

विश्व में प्रचार और व्यवसाय

कॉफी की बढ़ती मांग ने इसके उपयोग के कई नए तौर तरीके ईजाद किए। कॉफी के प्रयोग के नए तौर–तरीकों की खोज सबसे ज्यादा बीसवीं सदी में ही हुई। बीसवीं सदी में इन्स्टैन्ट कॉफी और कैफीन–मुक्त कॉफी बाजार में आ गई। कैफीन मुक्त कॉफी की खोज एक जर्मन आयातकर्ता लुडविंग रोजेलियस ने 1903 में की थी। उसके पास बाहर से कॉफी की एक खेप आई। उसकी एक खेप में बीन खराब हो गई थी, ऐसी खराब हुई बीनों को लुडविंग ने कुछ वैज्ञानिकों को जाँच करने के लिए दे दिया। लुडविंग ने जिन्हें जाँच के लिए खराब बीनों को सौंपा था, वे लोग कॉफी से कैफीन अलग करने वाले प्रथम तकनीशियन नहीं थे, फिर भी इन लोगों ने

कॉफी के स्वाद को बिना बिगाड़े ही बीन से कैफीन को अलग कर दिया। कैफीन मुक्त कॉफी सन 1923 में अमेरिका पहुँची।

घुलनशील कॉफी की खोज जापानी मूल के अमेरिकी रसायनज्ञ 'सतोरी कातो' ने की थी। इन्स्टैन्ट कॉफी के नाम से प्रचारित इसकी भारी मात्रा में उत्पादन तकनीक की खोज, जॉर्ज कॉस्टैंट वाशिंग्टन नामक अंग्रेजी ने ग्वाटेमाला में अपने निवास के दौरान की थी। एक दिन बगीचे में बैठकर वह अपनी पत्नी का इंतजार कर रहा था। उस दिन उन दोनों में हरी घास पर बैठकर गरमागरम कॉफी के लुत्फ उठाने की बात पहले से तय थी, इंतजार के दौरान उसने देखा की केतली की टोटी में पाउडर जैसा कुछ जमा हो गया है। उसे लगा कि यह कॉफी की भाप के संघनन से बनी वस्तु है। इसी सोच ने उसे घुलनशील कॉफी बनाने के लिए प्रेरित किया। इस दिशा में उसने 1906 में प्रयोग शुरु किया और 1909 में उसके द्वारा बनाई गई इन्स्टैन्ट कॉफी 'रैड ई कॉफी' के नाम से बाजार में आ गई।

सन् 1938 में प्रमुख कॉफी उत्पादक देश ब्राजील में कॉफी की भारी पैदावार हुई, तब यहाँ के कॉफी उत्पादकों ने इस समस्या से निपटने के लिए नेस्ले कंपनी से सहायता मांगी। सहायता की इस मांग पर नेस्ले के शोधकर्त्ताओं ने 'फ्रीज ड्राइड' कॉफी का निर्माण किया। 'नेस्कॅफे के नाम से इसे पहली बार स्विटरलैंड में जारी किया गया था। सन् 1956 में टेलीविजन के व्यापारिक प्रसार ने नेस्कॅफे की खपत में खूब बढ़ोत्तरी कर दी। टेलीविजन कार्यक्रमों के छोटे अवधि के व्यावसायिक ब्रेक के समय ही इन्स्टैन्ट कॉफी का प्याला तैयार होने लगा और यह लोगों की जबान की चहेती बन गई। इस स्थिति का भरपूर लाभ उठाते हुए इंस्टेंट कॉफी के निर्माता 'नेस्ले' और 'जनरल फूड्स' कंपनी के संचालकों ने टी.वी. के कामर्शियल ब्रेक के समय इन्स्टैन्ट कॉफी का खूब प्रचार किया।

प्रचलन

कॉफी की खोज और प्रचार की कहानी बहुत रुचिकर है। इसके संबंध में एक कहानी इस प्रकार है कि एक अरब शेख को देश निकाला हो गया तो वह जंगल में जा पहुँचा और वहाँ एक झाड़ पर लगी बोरियों का काढ़ा बनाकर पीने लग गया। कॉफी की खोज के विषय में पहली कहानी से ज्यादा चर्चित एक और कहानी है कि 600 से 800 ई. के बीच पूर्वी अफ्रीका में काल्डी नामक एक चरवाहा पहाड़ी पर अपनी बकरियों को चरा रहा था। शायद वह जगह आज की आधुनिक इथोपिया है। बकरियों ने असामान्य रूप से उछल–कूद मचाना शुरू कर दिया। बकरियों के इस अप्रत्याशित व्यवहार को देखकर चरवाहे ने इसकी पड़ताल शुरू की तो पता चला कि उन बकरियों ने पहाड़ी पर उगी झाड़ पर फली की बोरियों को खा लिया है। बकरियों की हालत को देखकर चरवाहे ने भी उन बोरियों को खाकर चखा। तब उसे अपने थके शरीर में ताजगी और चुस्ती महसूस हुई। उसे उस रात नींद भी नहीं आई। इस पहाड़ी के पास स्थित एक मठ का निवासी जब वहाँ से गुजरा तो चरवाहे ने सारा किस्सा सुनाया। चेडेली नामक इस मठवासी ने भी कॉफी की बेरियों को तोड़ा और उसका पाउडर बनाकर पानी में उबाल कर पीया। संभवतः दुनिया का सबसे पहला कॉफी का प्याला यही था। यहीं से कॉफी की शुरुआत हुई जो उत्तरोत्तर प्रचारित और परिष्कृत हो हुई।

अरब देशों में इसका प्रचलन नौवीं सदी के अंत में शुरु हुआ, अरबी में इसे कहवा कहते हैं। इसका अरबी में अर्थ होता है, वह तत्व जो नींद उड़ा दे। ऐसा लगता है कि अरब में ही 1000 से 1200 ई. के बीच कॉफी की बेरियों के बीज निकालकर उन्हें भूनने के बाद पीसकर उसके पाउडर को गरम पानी में घोलकर पीने की प्रथा शुरू हुई। तेरहवीं सदी तक आते आते कहवा पीना अरब समाज का मजहब–सा बन गया। मुसलमान जहाँ भी गए अपने साथ कहवा भी लेते गए।

अफ्रीकी देश यमन में सन् 1250 और 1600 के मध्य कॉफी को बकायदा खेतों में उगाया जाने लगा। सन् 1475 में इस्तांबूल में पहला कहवा घर या कॉफी शॉप खुली। इसके दो वर्ष बाद ही आटोमान तुर्कों ने तुर्की में कॉफी की शुरुआत कर दी। कॉफी को लोकप्रिय बनाने में इस घटना की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस घटना के बाद देखते ही देखते कॉफी का दैनिक और सम्मानजनक पेय पदार्थ के रूप में प्रयोग होने लग गया। इसके बाद तो उस क्षेत्र में ढेरों कहवाघर खुल गए जहाँ कॉफी की चुस्कियों के साथ लोग गपशप, संगीत, मौसिकी, नाच–गाना, किस्से कहानियों के साथ ही बहस मुसाहिबों का लुत्फ उठाने के लिए भारी संख्या में इक्ट्ठा होने लगे। उस समय कॉफी यूरोप भर में अत्यधिक प्रचलित हो चुकी थी। 17वीं और 18वीं सदी में लंदन में जितने कहवा घर खुले थे उतने आज भी नहीं हैं।

उस समय के कॉफी हाउस आज की तरह सजे–सँवरे नहीं होते थे, बल्कि कॉफी हाउस ऐसी जगह हुआ करते थे जहाँ हमेशा भीड़–भाड़ और गहमा–गहमी मची रहती थी। यूरोप में कॉफी की स्थापना का श्रेय उन डच लोगों को जाता है जिन्होंने अरब से कॉफी का पौधा चुराकर यूरोप पहुँचाकर 1690 में इसकी खेती शुरू करवाई। डच लोगों ने ही ईस्ट इंडिया कंपनी से कॉफी का व्यापार शुरू किया और श्रीलंका और फिर इसे अपने उपनिवेश जावा में ले जाकर इसकी खेती शुरू कराई। इस तरह एमस्टर्डम कॉफी के व्यापार का विश्वस्तरीय केंद्र बन गया। डचों ने ही काफी के पौधों को दक्षिणी अमेरिकी उपनिवेश में ले जाकर उसके बागान लगाए।

भारत में कॉफी

भारत में भी कॉफी का पर्याप्त प्रचलन है। यद्यपि यहाँ उत्तरी भारत में तो चाय का बोल–बोला है, लेकिन दक्षिण भारत में कॉफी ही पी जाती है। उत्तरी भारत में भी स्तरीय परिवारों में ठंडी और गरम दोनों प्रकार की कॉफी पी जाती है। भारत में कॉफी उद्योग को स्थापित करने का श्रेय एक मुसलमान को दिया जाता है। 1670 में बाबा बुड्ढन नामक हाजी भारत में कॉफी के सात फल लाए जिनको कर्नाटक में कद्रेमुख की पहाड़ियों पर बोया गया। अंग्रेजों के आगमन के बाद तो यहाँ कहवा के पेड़ों के भारी पैमाने पर बाग लगाए गए। 1870 के पूर्व तक भारत में कॉफी की खेती का खूब विकास हुआ। 1870 में लीफरस्ट नामक फफूंद जनित पादप रोग ने भारतीय कॉफी की खेती को भारी नुकसान पहुँचाया। जिससे भारतीय कॉफी उद्योग तबाह हो गया। इसके लगभग आधी सदी के बाद 1920 में भारत में अरेबिका जाति की कॉफी की फिर से खेती शुरु की गई। अरेबिका कॉफी की खेती से भारत एशिया का दूसरा सबसे बड़ा कॉफी उत्पादक देश हो गया है। एशिया के कुल कॉफी उत्पादन का 25 प्रतिशत हिस्सा भारत के कॉफी बागानों में ही पैदा होता है।

भारत में कॉफी की खेती समुद्र स्तर से लेकर 1850 मीटर की ऊँचाई तक होती है। सामान्यतया इसकी खेती पहाड़ियों पर बने सीढ़ीदार खेतों में होती है। भारतीय कॉफी हिंदेशियाई बागानों की कॉफी से बहुत अधिक मिलती जुलती है। भारत में सर्वश्रेष्ठ कॉफी कर्नाटक के बागानों में पैदा होती है। भारत की 80 प्रतिशत कॉफी केरल और तमिलनाडु में पैदा की जाने वाली कॉफी जैसी लगती है। भारतीय कॉफी में इलायची, जायफल और काली मिर्च का स्वाद आता है। भारत में 'मानसूनी कॉफी' उगाई जाती है। इस कॉफी को बनाते समय हरी बेरियों पर खुले मौसम में मानसूनी हवाएं गुजरी जाती हैं। इस प्रकार के उपचारण से कॉफी के बाद स्वाद में मधुरता आ जाती है। इन्डोनेशियाई कॉफी भी इसी तरह तैयार की जाती है।

ooo

10

स्वास्थ्य-रक्षक नाशपाती

• मधु ज्योत्स्ना

नाशपाती एक सर्वसुलभ उपयोगी फल है। पोषक एवं औषधीय तत्वों से युक्त इस फल को भारतीय स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने अनेक विशेषताओं से युक्त बताया है। आयुर्वेद में इसे शारीरिक व्याधियों के कारण पित्त और वायु–जनित रोगों का शमन करने वाला बताया गया है। इसे पचने में 'गुरु' (भारी) स्निग्ध, मधुर, अम्लक, कषाय (कसैला), विपाक और स्वाद में मधुर तथा शीत वीर्य या शीत प्रभाव वाला कहा गया है। स्वास्थ्य की दृष्टि से इसे शारीरिक कमजोरी को दूर करने वाला, पुष्टिकारक, हृदय को बल प्रदान करने के लिए साथ ही उसकी संचालन प्रक्रिया को सुचारु और दृढ़ बनाने वाला, दस्त को नियंत्रित करने वाला, काया–जनित दाह को शमित करने वाला, नाक और मुँह से आने वाले खून को रोकने वाला, सफेद और खूनी आँव से मुक्ति दिलाने वाला, खूनी बवासीर में लाभकारी तथा स्त्रियों के रक्त प्रदर एवं श्वेत प्रदर में उपयोगी बताया गया है। किसी भी प्रकार के रक्तस्राव में इसका प्रयोग लाभकारी रहता है।

पौष्टिक एवं रोग निवारक तत्वों से युक्त इस फल में कैल्शियम, कार्बोहाइड्रेट, फास्फोरस तथा उपयोगी विटामिन 'ए' की उपयुक्त मात्रा पाई जाती है तथा थोड़ी मात्रा में विटामिन 'ई' और विटामिन 'बी' कॉम्पलेक्स भी पाया जाता है। विशेषज्ञों ने नाशपाती के फल में सबसे अधिक टार्टरिक तथा गैलिक अम्लों की उपस्थित अंकित की है जिनसे यह प्रायः कई अवसरों पर सेब से अधिक उपयोगी हो जाती है।

नाशपाती के खाने लायक प्रत्येक 100 ग्राम भाग में नमी 86 प्रतिशत, प्रोटीन 0.6 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 11.9 प्रतिशत, खनिज लवण 0.3 प्रतिशत, रेशा 0.1 प्रतिशत, वसा 0.2 प्रतिशत, कैल्शियम 8 मिग्रा, फास्फोरस 15 मिग्रा, लौहतत्व 0.5 मिग्रा, थायमिन 0.06 मिग्रा, राइबोफ्लेविन 0.03 मिग्रा, नायसिन 0.2 मिग्रा और ऊर्जा 52 किलो कैलोरी पाई जाती है।

नाशपाती को हिंदी में नाशपाती, संस्कृत में अमृतफल तथा अंग्रेजी में पेअर या पियर कहते हैं। इसका वानस्पतिक नाम पाइरस कम्युनिस है। विशेषज्ञों का मत है कि नाशपाती को छिलके सहित खाना चाहिए क्योंकि इसमें पाए जाने वाले पोषक तत्व छिलके में प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जिससे छिलका उतारने से पोषक तत्व छिलके के साथ ही निकल जाते हैं।

रोगोपचार में नाशपाती : विभिन्न पोषक तत्वों एवं रोग निवारक तत्वों की उपस्थिति के कारण नाशपाती के फल के प्रयोग से शरीर के महत्वपूर्ण अंगों को शक्ति मिलती है और कई रोगों का शमन भी हो जाता है, जिनमें से कुछ के विवरण इस प्रकार हैं:–

पक्षाघात में : पक्षाघात के रोगी को नाशपाती, अंगूर और सेब के रस को समान मात्रा में मिलाकर दिन के समय दो बार देना चाहिए।

कब्ज में : कब्ज के रोगी के लिए नाशपाती अत्यंत लाभकारी है, कब्ज के रोगी को सुबह के समय नाश्ते में नाशपाती का प्रयोग करना चाहिए।

उदर विकार में : सूखे बेल के फल के चूर्ण को नाशपाती के शर्बत में मिलाकर प्रयोग करने से खूनी आँव से आराम मिलता है।

खूनी बवासीर में : नाशपाती के रस के साथ काले तिल के चूर्ण और मक्खन को मिलाकर लेने से गुदा मार्ग के खून देने वाले मस्से सिकुड़ जाते हैं, जिससे खूनी बवासीर में आराम मिलता है, ऐसा आयुर्वेद में कहा गया है।

रक्त वमन में : खून की उल्टी वाले रोगी को औषधि के साथ ही पथ्य के रूप में नाशपाती का रस लाभ पहुँचाता है।

वर्जनाएँ : तमाम विशेषताओं के बाजूद नाशपाती को कफ कारक बताया गया है। बुखार में इसका रस और फल दोनों ही नहीं लेना चाहिए। दमा, कफ और स्नोफीलिया के रोगी और इस प्रकृति के वृद्धों को इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। जिन लोगों को सर्दी, जुकाम जल्दी होता है उन्हें इसके प्रयोग से बचना चाहिए। इसका कच्चा फल किडनी के लिए हानिकारक होता है। अतः इसके कच्चे फल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्लीहा के रोगियों के लिए नाशपाती का फल और रस दोनों ही हानिकारक है।

ooo

11

पारिभाषिक शब्द-संग्रह का उपयोग: एक बहुमूल्य अनुभव

• डॉ. के.के. शर्मा

भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा वर्ष 1973 में विज्ञान–संबंधी वृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रह दो खंडों में प्रकाशित किया गया। प्रत्येक खंड लगभग 1000 पृष्ठों का था और प्रत्येक का मूल्य 17 रुपए 25 पैसे रखा गया था। इस शब्द संग्रह में गणित, गृहविज्ञान, प्राणि–विज्ञान, वनस्पति–विज्ञान, भू–विज्ञान, रसायन, भौतिकी और भूगोल विषयों के स्नातकोत्तर स्तर तक के एक लाख तीस हज़ार शब्द संकलित किए गए थे। शब्दावली के निर्माण का कार्य शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 1952 में वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड के मार्गदर्शन में आरंभ किया गया। फिर इसी कार्य को विधिवत् वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने आगे बढ़ाया, जिसकी स्थापना शिक्षा मंत्रालय द्वारा अक्टूबर 1961 में की गई। वर्ष 1994 में शब्द–संग्रह का संशोधित परिवर्धित संस्करण पहले की तरह ही दो खंडों में प्रकाशित किया गया। इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों में आयोग द्वारा विभिन्न विषयों के विशिष्ट शब्द कोशों और हिंदी भाषा में बहुत से संदर्भ ग्रंथों का प्रकाशन किया गया। साथ ही दो त्रैमासिक पत्रिकाओं विज्ञान–विषयक, विज्ञान गरिमा सिंधु, तथा मानविकी विषयक 'ज्ञान गरिमा सिंधु' का प्रकाशन भी आयोग द्वारा किया जा रहा है। ये सभी प्रकाशन लोगों को हिंदी भाषा पढ़ाने–पढ़ने में सहायक सिद्ध हुए और इस दिशा में आगे बढ़ने हेतु प्रेरित किया। शब्द संग्रहों की सहायता से अनेक विद्वानों ने हिंदी भाषा में वैज्ञानिक, तकनीकी और अन्य क्षेत्रों से संबंधित पुस्तकें लिखीं।

मैंने सर्वप्रथम 1974 में शब्द–संग्रह विज्ञान के दो खंड खरीदे। इनकी सहायता से "हाइड्राइड रसायन" नामक पुस्तक लिखी, जिसका प्रकाशन राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर द्वारा किया गया। इसके पश्चात् निरंतर हिंदी भाषा में विज्ञान, रसायन और पर्यावरण शिक्षा पर बहुत सी पुस्तकें लिखीं, जिनका समय–समय पर प्रकाशन होता रहा। पक्षियों पर लिखी मेरी एक पुस्तक–'बुलबुल बया और उसके दोस्त' का प्रकाशन राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन सी ई आर टी), नई दिल्ली द्वारा नवंबर 2009 में किया गया। इसके अतिरिक्त मैं एनसीईआरटी द्वारा अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित विज्ञान, रसायन, पर्यावरण शिक्षा आदि विषयों की पाठ्यपुस्तकों और पूरक पुस्तकों के हिंदी अनुवाद, समीक्षा और संपादन कार्य में निरंतर सहयोग कर रहा हूँ। ये सभी कार्य आयोग द्वारा प्रकाशित विभिन्न शब्द संग्रहों की सहायता से ही किए जाते हैं।

परंतु खेद का विषय यह है कि आज भी देश के वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा से जुड़े शिक्षक और अन्य लोग जो हिंदी भाषी क्षेत्रों में रह रहे हैं और हिंदी में पुस्तकें लिख रहे हैं अथवा उनका उपयोग कर रहे हैं, आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द–संग्रहों की जानकारी नहीं

रखते। जिनको जानकारी है, वे इनका उपयोग नहीं कर रहे हैं। इन परिस्थितियों के रहते लिखी जाने वाली पुस्तकों और प्रश्न पत्रों में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्द अलग–अलग रूपों में पढ़ने को मिलते हैं। साथ ही ये शब्द सही तरीके से लिखे भी नहीं जाते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

(1) अंग्रेजी शब्द 'ब्लीचिंग पाउडर' के लिए सही हिंदी शब्द निरंजक चूर्ण है, परंतु इसके लिए पुस्तकों में ब्लिचिंग चूर्ण, ब्लीचिंग पाउडर, रंग उड़ाउ चूर्ण, रंग–काट चूर्ण, आदि शब्दों का प्रयोग किया है, जो विद्यार्थियों के साथ–साथ प्रश्न पत्र निर्माता को भी भ्रम में डाल देते हैं।

(2) शब्द–संग्रह में अंग्रेजी शब्दों का अनुवाद उपलब्ध होने पर भी यदि लेखकों को शब्द–संग्रह की जानकारी नहीं है अथवा उनके पास शब्द संग्रह उपलब्ध नहीं है, तो वे अंग्रेजी के शब्दों का लिप्यंतरण मात्र करके हिंदी में लिख देते हैं। उदाहरण के लिए sedimentation को सेडीमटेशन लिख देते हैं, जबकि इसका सही हिंदी अनुवाद अवसादन है। इसी प्रकार osmosis को ऑसमोसिस अथवा ऑस्मोसिस अथवा आसमॉसिस लिख देते हैं, जबकि इसके लिए सही हिंदी शब्द परासरण है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। लोगों का कहना है कि चूँकि अंग्रेजी के शब्द प्रचलन में हैं अतः हिंदी में भी उन्हें वैसा ही लिख दिया जाना चाहिए। यह बिल्कुल सही नहीं है। यदि हम हिंदी शब्दों का प्रयोग करना शुरू करेंगे, तो वे भी शीघ्र प्रचलन में आ जाएंगे, और आ भी रहे हैं।

(3) रसायन में तत्वों और यौगिकों के नामों का अनुवाद नहीं किया जाता, उन्हें वैसा ही हिंदी में लिखा जाता है। परंतु शब्द–संग्रह का उपयोग नहीं करने के कारण लेखक उन्हें उनकी सही वर्तनी के अनुसार ठीक से नहीं लिखते। कुछ उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं।

ऐसे अनेक उदाहरण हैं।

(4) मापन मात्रकों या इकाइयों को भी विज्ञान और तकनीकी संबंधी पुस्तकों में विविध प्रकार से व्यक्त किया जाता है, जिनमें से अधिकांश गलत तरीके से लिखे होते हैं। मात्रकों की अंतरराष्ट्रीय पद्धति में दिए मात्रकों के संकेतों को हम इच्छानुसार नहीं बदल सकते, उन्हें उनके मूल रूप में ही दर्शाना पड़ता है। उदाहरण के लिए लंबाई के एक मात्रक सेंटीमीटर का संकेत cm है जिसे c.m., cm., cms,

अंग्रेजी नाम	हिंदी में सही शब्द	बहुत सी पुस्तकों में जैसा छपा मिलता है।
aluminium	ऐलुमिनियम	एल्यूमिनियम, एल्युमीनीयम, आदि
calcium	कैल्सियम	केल्शियम, कैलशियम, आदि
phenolphthalein	फीनॉलफ्थेलिन	फिनाल्फथेलिन, फीनाफ्थेलिन, फिनलफथलिन, आदि
carbon dioxide	कार्बन डाइऑक्साइड	कार्बन डाईआक्साइड, कार्बन–डाईआक्साइड, आदि

से.मी., सेमी., आदि से व्यक्त करना सही नहीं है। इसी प्रकार आयतन के एक मात्रक का संकेत ml है जिसे ml, m.l., ml., mls. मिली, मि.ली., आदि द्वारा दर्शाया जाना सही नहीं है। ऐसे और भी बहुत से उदाहरण हैं।

इस सब बातों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हैं कि हिंदी भाषा में विज्ञान और तकनीकी विषयों की पुस्तकें, लेख, आदि लिखते समय आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द–संग्रहों में नए शब्द जोड़ना और वर्तमान शब्दों, यदि आवश्यकता हो, को नया रूप देने का कार्य करना शब्द–संग्रहों और परिभाषा कोशों का उपयोग कर वैज्ञानिक और तकनीकी हिंदी के प्रचलन को बढ़ावा देंगे।

12

हिंदी-अंग्रेजी मिश्रित द्विभाषी माध्यम द्वारा विज्ञान शिक्षा : आवश्यकता एवं भविष्य

• *प्रशांत*

आज का युग विज्ञान के विकास की पराकाष्ठा का युग है। देश की खुशहाली तथा आर्थिक उन्नति के लिए विज्ञान में उपयोगी शोध कार्य तथा आविष्कार होने आवश्यक हैं। हमारा यह सौभाग्य है कि हम ऐसी मिट्टी में उत्पन्न हुए हैं जिसमें सदा से ही महानतम वैज्ञानिक व गणितज्ञ उत्पन्न होते रहे हैं बोधायन्, कणाद, सुश्रुत, चरक, धनवन्तरि, आर्यभट, श्रीधर, भास्कराचार्य आदि महान वैज्ञानिकों को अनेक मूलभूत वैज्ञानिक और गणितीय अवधारणाओं के विकास का श्रेय है। हमारे देश के प्राचीन ग्रंथ इस बात के प्रमाण हैं कि आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र, बीजगणित, त्रिकोणमिति, रेखागणित, नक्षत्र विद्या, भूगर्भ विद्या, धातु–कर्म का आविष्कार तथा अनुसंधान भारत में हुआ। अंकगणित में शून्य, स्थानमान पद्धति तथा दशमलव के बारे में तो एक फिल्म गीत भी है– 'यूँ चाँद पे जाना मुश्किल था। धरती और चाँद की दूरी का अंदाजा लगाना मुश्किल था। देता न दशमलव भारत तो .....।

अब हम वर्तमान और भविष्य की बात करें। विज्ञान की उन्नति के लिए विज्ञान की उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों में शोध–अनुसंधान के प्रति रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है। वर्तमान समय में अधिकांश शिक्षाविदों का मत है कि मातृभाषा द्वारा ही मौलिक चिंतन व लेखन संभव है। विदेशी भाषा तोता–रटंत को बढ़ावा देती है। विज्ञान के प्रतिभाशाली छात्रों की उपेक्षा भाषा माध्यम के कारण न हो, यह राष्ट्रहित में आवश्यक है।

प्रश्न यह है कि स्नातक व स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए सर्वश्रेष्ठ भाषा माध्यम क्या हैं? चूँकि एक ओर राष्ट्र के लिए पर्यावरण–सुसंगत स्वदेशी वैज्ञानिक अनुसंधान आवश्यक है तो दूसरी ओर अंतरराष्ट्रीय विज्ञान शोध पत्रिकाओं तथा सारांश सेवा (ऐब्सट्रेक्ट सर्विस) द्वारा ज्ञान का आदान प्रदान भी आवश्यक है। अतः भारत में स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर के लिए द्विभाषी (हिंदी–अंग्रेजी) माध्यम ही देश की वैज्ञानिक उन्नति के लिए अधिक उचित है। इसके लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित शब्द संग्रह व पारिभाषिक कोश अत्यधिक उपयोगी हैं। ये शब्द कोश आयोग द्वारा बहुत कम मूल्य पर उपलब्ध कराए जाते हैं।

हिंदी–अंग्रेजी द्विभाषी माध्यम की विज्ञान–शिक्षा के महत्वपूर्ण लाभ इस प्रकार हैं–

1. हिंदी में विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों के रुचिकर व अर्थद्योतक होने के कारण विषय की स्पष्टता से ज्ञानार्जन में सुगमता तथा कौशल वृद्धिः–

हिंदी में विज्ञान के पारिभाषिक शब्द अर्थद्योतक होते हैं, अर्थात शब्द से ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इससे वैज्ञानिक तथ्य सरलता से समझ में आ जाते हैं व याद रहते हैं। कुछ उदाहरण हैं–

भौतिकी शब्द–संग्रह तथा भौतिकी परिभाषा कोश से–			
	अंग्रेजी शब्द	**हिंदी पर्याय**	**परिभाषा / व्याख्या**
1.	Aberration	विपथन	प्रकाशीय तंत्र में एक प्रकार का प्रतिबिंब दोष। यह सभी प्रकाश किरणों का एक ही बिंदु पर फोकसन न हो सकने के कारण होता है। अर्थात कुछ किरणें पथ से अलग हो जाती हैं। यहाँ 'वि' उपसर्ग है जिसका अर्थ है अलगाव। विपथन = वि+पथन अर्थात् पथ से अलगाव होना। अतः विपथन शब्द के संधि–विच्छेद से ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है।
2.	Annular eclipse	वलयाकार ग्रहण	ऐसा सूर्यग्रहण जिसमें सूर्य की परिधि वलयाकार दिखती है।
3.	Adiabatic change	रुद्धोष्म परिवर्तन	तंत्र में वह परिवर्तन जिसमें ऊष्मा के विनिमय को रोक दिया जाता अर्थात् अवरुद्ध कर दिया जाता है। रुद्धोष्म = रुद्ध+ऊष्मा। अतः रुद्धोष्म शब्द के संधि विच्छेद से ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है। अंग्रेजी के Adiabatic शब्द में स्पष्टार्थता नहीं है और संधि विच्छेद नहीं होता।
4.	Bearing	दिक्–कोण	किसी स्थान से किसी वस्तु की आपेक्षिक क्षैतिज दिशा। इसे प्रायः उत्तर से दक्षिणावर्त दिशा में अंशों में मापा जाता है। दिक्–कोण = दिशा से कोण
5.	Bucking coil	प्रतिकारी कुंडली	विद्युत चुंबक पर लगी वह कुंडली जो मुख्य कुंडली का प्रतिकार (विरोध) करती है।
6.	Collector Junction	आधार संग्राही संधि	ट्रांजिस्टर के आधार व संग्राहक इलेक्ट्रोडों के बीच स्थित एक अर्धचालकीय संधि
7.	Impedance	प्रतिबाधा (प्रतिरोधी)	किसी परिपथ द्वारा प्रत्यावर्ती धारा में उत्पन्न बाधा
8.	Incandescence	तापदीप्ति	उच्च ताप पर किसी पदार्थ से दृश्य प्रकाश का उत्सर्जन। तापदीप्ति = ताप+दीप्ति, अर्थात् ताप से उत्पन्न प्रकाश
9.	Kinetic energy	गतिज्ञ ऊर्जा	किसी पिंड की गति के कारण उत्पन्न ऊर्जा गतिज = गति से उत्पन्न

भौतिकी शब्द–संग्रह तथा भौतिकी परिभाषा कोश से–			
	अंग्रेजी शब्द	**हिंदी पर्याय**	**परिभाषा / व्याख्या**
10.	Hunter's moon	कार्तिक पूर्णिमा	कार्तिक मास की पूर्णिमा। अंग्रेजी के शब्द से वर्णित भारतीय कालावधि स्पष्ट नहीं है।
11.	Luminance	ज्योतिर्मयता	दी हुई दिशा में किसी पृष्ठ के प्रतिमात्रक प्रक्षेपित क्षेत्रफल की ज्योति–तीव्रता जो उसी दिशा से देखने पर प्राप्त होती है। ज्योतिर्मय = ज्योतिः + मय = ज्योति सहित
12.	Luster	चमक	वस्तु की सतह से परावर्तित प्रकाश।
13.	Manometer	दाबांतरमापी	गैस की दाब मापने का यंत्र।
14.	Milky way	आकाश गंगा	आकाश में प्रकाश की एक पट्टी जो खरबो तारों से निर्मित है। आकाश गंगा = आकाश में स्थित गंगा। जैसे गंगोत्री व ऋषिकेश में गंगा का फेनिल जल श्वेत होता है उसी प्रकार आकाशगंगा भी श्वेत दिव्य है।
15.	Shearing strain	अपरूपक विकृति	एक प्रकार की विकृति जिसमें किसी ठोस वस्तु के समांत समतल आपस में समांतर तो बने रहते हैं परंतु अपने ही समतल से विस्थापित हो जाते हैं। यहाँ 'अप' उपसर्ग है जिसका अर्थ है दूर हटाना, बिगाड़ना। अपरूपण = रूप को विकृत करने वाला, अपरूपण करने वाला
गणित शब्द–संग्रह तथा गणित परिभाषा कोश से–			
16.	Conformal transformation	अनुकोण रूपांतरण	यहाँ 'अनु' उपसर्ग है जिसका अर्थ है पीछे, जैसे अनुकरण। अतः वह रूपांतरण जिसमें कोण के परिमाण व दिशा का अनुकरण किया गया हो (अर्थात् कोण व दिशा समान या अनुरूप हो), conformation शब्द में यह स्पष्टता नहीं है।
17.	Congruence expression	समशेषता व्यंजक	समशेषता = समान+शेषता। यदि a=b (mod p) तो a=b, पूर्णांक p से विभाज्य होगा और a तथा b को अलग–अलग p से भाग देने पर समान

गणित शब्द–संग्रह तथा गणित परिभाषा कोश से–			
	अंग्रेजी शब्द	हिंदी पर्याय	परिभाषा / व्याख्या
			शेषफल बचेगा। समशेषता शब्द के संधि–विच्छेद से ही यह स्पष्ट हो जाता है। अंग्रेजी के congruence शब्द से उपरोक्त नहीं मिलती।
18.	Congruence of conics	द्विप्राचल शांकव कुल	जैसे य = क कोज्या प, र = ख ज्या प {x=a cos0, y= b sin0} किसी दीर्घवृत्त का प्राचलिक समीकरण है जो दो प्राचलों (पैरा मीटरों) क, ख के मान के अनुसार कई हो सकते हैं। द्विप्राचल = दो+प्राचल। अंग्रेजी के congruence शब्द से यह जानकारी पता नहीं चलती है।
19.	Congruence	सर्वांगसम लघुकरण	किसी आकृति के कोणों को समान रखते हुए सभी भुजाओं का लघूकरण। सर्वांगसम = सर्व+अंग अर्थात् सभी भुजाएँ। वाक्यों 17,18,19 में Congruence के अलग–अलग अर्थों की तुलना करें। हिंदी पर्यायों में स्पष्टता है।
20.	Contour	परिरेखा	किसी सतह पर बनी वह रेखा जिसके परित समाकलन किया जाता है। परिरेखा = परिगत रेखा = सब ओर की रेखा।
21.	Ortho centre	लंब केंद्र	त्रिभुज के शीर्ष लंबों का प्रतिच्छेदन बिंदु। लंब केंद्र = लंबों का केंद्र।
22.	Absissa	भुज	कार्तीय निर्देशांक में किसी बिंदु का X निर्देशांक। यदि हम कार्तीय तल के सामने अपनी भुजाएं दोनों ओर फ़ैला कर क्षैतिज कर लें तो वे X अक्ष के समांतर हो जाती हैं। 'भुंज' = 'भुजा' के समांतर।
23.	Trapezium	समलंब चर्तुभुज	वह चर्तुभुज जिसकी दो भुजाएं समांतर हों। दो समांतर भुजाओं के बीच के सभी लंबों की लंबाई सदैव समान होती है। समलंब =समान+लंब
24.	Rhombus	समचतुर्भुज	वह चतुर्भुज जिसकी चारों भुजाएँ समान लंबाई की हों। समचतुर्भुज = समान+चारों+भुजाएं।

गणित शब्द–संग्रह तथा गणित परिभाषा कोश से–			
	अंग्रेजी शब्द	हिंदी पर्याय	परिभाषा / व्याख्या
25.	Orthogonal trajectory	लंबकोणीय संछेदी	वक्रों के किसी परिवार के प्रत्येक सदस्य को समकोण पर काटने या छेदन करने वाला कोई वक्र।
26.	Singular point	विचित्र बिंदु	सम्मिश्र चर के फलन का ऐसा बिंदु जिस पर फलन वैश्लेषिक न हो।
27.	Fuzzy logic	अस्फुट तर्क	गणित की एक शाखा जिसमें ढीले तर्कों का अध्ययन करते है अर्थात् जिसमें 'भूल चूक लेनी देनी' का नियम लागू होता है। अस्फुट = जो खिला न हो, अस्पष्ट।
28.	Intrinsic equation	नैज समीकरण	किसी वक्र का सूत्र, कोण = चाप/त्रिज्या से निर्मित समीकरण। इसमें किसी निर्देशांक निकाय की आवश्यकता नहीं होती है अतः इसे 'नैज' कहा जाता है। नैज = निजी, अर्थात् इसमें वक्र के किसी बिंदु की निजी विशिष्टताओं जैसे कोण का माप (रेडियन में), चाप की लंबाई, त्रिज्या की लंबाई से ही समीकरण बन जाता है।
कंप्यूटर विज्ञान शब्द–संग्रह तथा कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश से–			
29.	Parity bit	समता द्वयंक	आंकडों के प्रेषण के लिए जनित द्वयंक। इसका प्रयोग आंकड़े की प्रामाणिकता, समरूपता व सत्यता की पुष्टि करने के लिए होता है।
30.	Parse	पद–व्याख्या	वाक्य को व्याकरणीय संरचना के अवयवों में वियोजित करना
31.	Scheme	विवरणिका	संपूर्ण आंकडा–संचय की तार्किक संरचना का विवरण
32.	Semantic error	अर्थबोध त्रुटि	क्रमादेश में क्रमादेशक द्वारा प्रयुक्त भाषा के अर्थ–बोध की त्रुटि।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि हिंदी पारिभाषिक शब्द अंग्रेजी शब्दों की अपेक्षा, अधिक सरल, रुचिकर तथा अर्थद्योतक हैं। अन्य विज्ञानों जैसे रसायन, वनस्पति, जंतु विज्ञान में भी इस प्रकार के शब्दों के उदाहरण ढूंढे जा सकते हैं। उच्च कोटि की वैज्ञानिक शब्दावली पर अधिकार ही व्यक्ति को वैज्ञानिक बुद्धि वाला महान

सृजनशील वैज्ञानिक बनाता हैं। कुछ अंग्रेजी शब्दों के हिंदी में एक से अधिक पर्याय होते हैं। गणित शब्द संग्रह में normal, order identity के अनेक पर्याय दिए हैं जो निम्न हैं–

Normal - प्रसामान्य, प्राकृतिक, मानक, सामान्य, अभिलंब।

Order - क्रम, कोटि, घात, मूलांक, समूहांक

Identity - तत्समक, सर्वसमिका, व्यष्टित्व

हिंदी में इन शब्दों का अर्थ प्रसंगानुसार लिया जाता है। उदाहरणार्थ रेखागणित में normal angle अभिलंब कोण, सांख्यकी में normal distribution प्रसामान्य बंटन, normal equation प्रसामान्य समीकरण तथा स्थिति विज्ञान में normal force अभिलंबीय बल आदि। इस प्रकार हिंदी शब्दों द्वारा विषय की स्पष्टता व सूक्ष्मता अधिक व्यक्त होती है। अतः हिंदी में विज्ञान तथा वैज्ञानिक शब्दावली पढ़ने विद्यार्थी सूक्ष्म बुद्धि वाला बनता है जिससे उसकी कौशल बुद्धि होती है। विज्ञान में द्विभाषी भाषा माध्यम होने से विद्यार्थी पढ़ाई को तोता रंटत की तरह नहीं लेंगे और सूक्ष्म बुद्धि होने से उनका शोध करने का स्वभाव बनेगा और बढ़ेगा। द्विभाषी भाषा माध्यम वैसे तो सभी विद्यार्थियों के लिए अच्छा है परंतु हिंदीभाषी प्रदेशों के जो विद्यार्थी हाईस्कूल व इंटरमीडिएट (हायर सेकेन्डरी) में हिंदी माध्यम से पढ़े हैं उनके लिए बहुत लाभकारी है क्योंकि उन्हें हिंदी वैज्ञानिक शब्दावली का कुछ ज्ञान होता है तथा वे हिंदी में ही वैज्ञानिक तथ्यों को सोचते व मूल्यांकन करते हैं। विज्ञान के प्रतिभाशाली छात्रों की उपेक्षा भाषा माध्यम के कारण न हो यह राष्ट्रहित में आवश्यक है। इंटरमीडिएट तक विज्ञान विषयों की हिंदी में बहुत श्रेष्ठ पुस्तकें उपलब्ध हैं। स्नातक स्तर की भी कुछ हिंदी पुस्तकें हैं। परंतु स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी में विज्ञान की पुस्तकें अपर्याप्त हैं या नहीं है। अंतः हिंदी माध्यम से माध्यमिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों द्वारा स्नातकोत्तर कक्षा में अपनी अंग्रेजी की विज्ञान पाठयपुस्तक के कुछ प्रारंभिक पाठों का स्वयं हिंदी में अनुवाद करने से विषयवस्तु की बोधगम्यता (समझना) व अधिगमता (याद रखना) बढ़ जाती है। हिंदी प्रदेशों के अधिकांश विश्वविद्यालयों मे हिंदी माध्यम भी स्वीकृत है। परीक्षा के लिए तैयारी भले ही अंग्रेजी में अधिक की जाए, परंतु प्रारंभ में विषयवस्तु को समझने व याद करने के लिए हिंदी का भी उपयोग लाभदायक है। अहिंदीभाषी क्षेत्र के विद्यार्थी अपनी मातृभाषा (जैसे गुजराती, मराठी, तेलुगु, तमिल आदि) में अनुवाद करें, परंतु विज्ञान के पारिभाषिक शब्द सदैव शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित ही प्रयोग करने चाहिए ताकि भविष्य में देश के किसी वैज्ञानिक संस्थान में सभी वैज्ञानिक एक साथ मिलकर आपस में वैज्ञानिक विचार–विमर्श तथा कार्य कर सकें। अनुवाद वाक्यक्रम से करना चाहिए तथा वाक्य रचना प्रवाहपूर्ण रखनी चाहिए। अनुवाद वह अच्छा होता है जो अनुवाद जैसा न लगे बल्कि मौलिक जैसा लगे। ध्यातव्य है कि अनुवाद भावों का किया जाता है शब्दों का नहीं। एक आदर्श भारतीय वैज्ञानिक तथा गणितज्ञ वह है जिससे अपनी विशेषज्ञता की विषयवस्तु को हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में अच्छी प्रकार से लिखने की योग्यता है। भारतीय भाषाओं में विज्ञान–लेखन को समृद्ध बनाने के लिए भी द्विभाषी माध्यम की विज्ञान शिक्षा बहुत लाभदायक है। हिंदी एक वैज्ञानिक भाषा है, इसमें जो लिखा जाता है वही बोला जाता है। विज्ञान की मूल शिक्षा एक वैज्ञानिक भाषा माध्यम के द्वारा होना अधिक लाभदायक तथा सर्वथा उचित है। अंग्रेजी में विज्ञान सीखना भी बहुत उपयोगी है परंतु हिंदी के साथ।

हिंदी–अंग्रेजी मिश्रित माध्यम का विद्यार्थियों में प्रचलन बढ़ने पर 'माँग और पूर्ति' के सिद्धांत के अनुसार प्रकाशन संस्थाएं भी अपनी विज्ञान की पुस्तकों के द्विभाषी संस्करण प्रकाशित करना प्रारंभ कर देंगी। इस प्रकार

की पुस्तकों में बाएँ पृष्ठ पर मूल अंग्रेजी में विषय–वस्तु होती है तथा दाएँ पृष्ठ पर उसका हिंदी अनुवाद वाक्यक्रम में होता है। कानून की बहुत सी पुस्तकों के द्विभाषी संस्करण प्रकाशित होते रहते हैं; उसी प्रकार विज्ञान की पुस्तकों की भी मांग बढ़ने पर होने लगेंगे।

2. स्वदेशी वैज्ञानिक अनुसंधान तथा पर्यावरण–सुसंगत देशज प्रौद्योगिकी के उन्नयन द्वारा राष्ट्र की समृद्धि में योगदान :–

परंपरागत देशज प्रौद्योगिकीयों के उन्नयन के लिए स्वदेशी व अनुसंधान अत्यावश्यक है। यह कार्य हिंदी माध्यम से विज्ञान शिक्षा प्राप्त वैज्ञानिक ही अच्छे ढंग से कर सकते हैं। मातृभाषा हिंदी में शिक्षा होने से उनकी ग्रहण शक्ति व तर्क शक्ति अधिक होती है। गणित और विज्ञान विषयों में इन्हीं की आवश्यकता होती है। भारत की परंपरागत देशज प्रौद्योगकियाँ पर्यावरण के लिए अच्छी व हानिरहित हैं, उदाहरण के लिए – भारत में कपडे रंगने के रंजक वनस्पतियों से निर्मित होते थे जबकि विदेशों में घातक रसायनों का प्रयोग होता है। पशुओं की खाल से चमड़ा बनाने के लिए भारत में चूने का प्रयोग होता था जबकि विदेशों में कॉस्टिक सोडे का प्रयोग होता है जो जल स्रोतो के लिए बहुत हानिकारक है। यही बात धातुकर्म के बारे में है, भारत की पारंपरिक लोह निर्माण तकनीक पर्यावरण के लिए हानिरहित है जबकि पाश्चात्य तकनीक ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ाने वाली है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति अर्थात् यूनानी, अमरीकी और यूरोपीय संस्कृति में भौतिकवाद तथा बौद्धिकता की प्रधानता है जबकि भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक–प्रधान रही है। पश्चिम प्रकृति पर विजय का आग्रही है जबकि प्रकृति भारत के लिए एक समांतर जीवन है। भारत में प्रकृति को माता (माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः) माना गया है, जैसे गंगा माता, नर्मदा माता, यमुना माता, धरती माता, भारत माता आदि। अतः प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक प्रकृति के प्रति बहुत संवेदनशील थे और पर्यावरण रक्षा के प्रति जागरूक थे। 18 अगस्त, 2009 को नई दिल्ली में पर्यावरण एवं वन मंत्रियों के राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रधानमंत्री माननीय श्री मनमोहन सिंह ने भी अपने उद्बोधन में कहा थाः "हमें अपनी जीवन शैलियों में मूलभूत विकल्प अपनाने होंगे और इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि उत्पादन और खपत में कौन सी चीजें अपनानी हैं और किन चीजों को नहीं करना है। विकास की हमारी नीति मौलिक और भिन्न हो सकती है और होनी चाहिए। हमें पर्यावरण के अनुकूल नई प्रौदयोगिकी में स्वयं का धन भी निवेश करना होगा। हमें अपनी पर्यावरण नीतियों का वैज्ञानिक आधार मजबूत करने की आवश्यकता है।" वैज्ञानिक प्रगति तथा पर्यावरण संरक्षण में तालमेल व सामंजस्य बिठाने के लिए प्राचीन भारतीय विज्ञान का उन्नयन–शोध आवश्यक है। भारतीय स्वदेशी जलवायु व पर्यावरण के अनुकूल विज्ञान के उन्नयन–शोध व अविष्कार के विशेषज्ञ वैज्ञानिकों को अपनी अलग पहचाने बनाने का अवसर भी मिलता है। ये वैज्ञानिक देश की स्थानीय मातृभाषा में उपयोगी व अच्छे विज्ञान का प्रसार भी कर सकते हैं।

द्विभाषी माध्यम की विज्ञान की पुस्तक की दाईं ओर छापे गए हिंदी पृष्ठ में व्याख्यापित ज्ञान प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक शोध–परंपरा से जुड़ाव की अनुभूति से उत्पन्न आत्मविश्वास प्रदान करता है। जिससे राष्ट्र के लिए उपयोगी गणित, विज्ञान व प्रौद्योगिकी में नए शोध करने के उत्साह में वृद्धि होती है, तथा बाएं अंग्रेजी पृष्ठ में व्याख्यापित ज्ञान अंग्रेजी की अंतरराष्ट्रीय विज्ञान शोधपत्रिकाओं तथा सारांश सेवा (ऐब्सट्रेक्ट सर्विस) में ज्ञान के आदान–प्रदान को सहज संभव बनाता है। देश के विज्ञान उद्धरण सूचकांक (साइंस साइटेशन इंडेक्स) में वृद्धि के लिए अंग्रेजी में शोधपत्र लिखना व प्रकाशित होना वर्तमान में लगभग अनिवार्य है। यदि भविष्य में कभी हिंदी की भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जर्मन, जापानी, रूसी भाषाओं जैसी प्रतिष्ठा हो जाए तब स्थिति अलग होगी। आदर्शवाद तो यह है कि वैज्ञानिक अनुसंधान

करते समय अपनी मातृभाषा में ही चिंतन किया जाए, परंतु अंत में उसके निष्कर्षों व शोधपत्र को हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लिखा जाए। अध्ययन व अनुसंधान में द्विभाषी माध्यम का प्रयोग करने वाले विद्यार्थियों को चाहिए कि अपने काम अच्छी तरह से करें और लोगों की आलोचनात्मक राय की चिंता न करें। दुनिया वाले क्या–क्या कहें, लेकिन विवेकवानों की विचार करने की शैली अलग होती है। वे अपना रास्ता अलग बनाते हैं और अपने रास्ते पर आप चला करते हैं। महान वैज्ञानिक और पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जी अब्दुल कलाम ने लिखा है– आज इसलिए वैज्ञानिक बन सका हूँ, क्योंकि मैं अपनी मातृभाषा में पढ़ा हूँ। वैज्ञानिक डॉ. आत्माराम, डॉ. जयंत नादलीकर, प्रो. एम.जी.के. मेनन ने मातृभाषा में विज्ञान की शिक्षा का समर्थन किया है। फादर कामिल बुल्के ने लिखा है– "भारत में संस्कृत मां है, हिंदी गृहिणी, अंग्रेजी नौकरानी"। इस तथ्य को कोई स्वाभिमानी भारतीय कैसे भुला सकता है। फादर कामिले बुल्के बेल्जियमवासी थे। यहाँ आगमन के बाद उन्होंने भारत को ही अपना देश बना लिया। उनके द्वारा निर्मित अंग्रेजी–हिंदी शब्दकोश बहुत लोकप्रिय है। उन्होंने हिंदी साहित्य पर भी शोध किया था। भारत में जितने भी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कार तथा यंत्र बने हैं उनके नाम हिंदी में ही रखे गए हैं जैसे– आर्यभट्ट व भास्कर उपग्रह, अप्सरा परमाणु–संयंत्र, अर्जुन टैंक, परम कंप्यूटर, अग्नि मिसाइल, चंद्रयान, अरिहंत पनडुब्बी आदि। अब हिंदी में अनेक विज्ञान शोध पत्रिकाएं भी प्रकाशित होती हैं, जैसे विज्ञान परिषद अनुसंधान पत्रिका (प्रयाग), भारतीय वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका (दिल्ली), प्राकृतिक एवं भौतिक विज्ञान शोध पत्रिका (गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यलय, हरिद्वार) आदि। इन पत्रिकाओं में शोधपत्र का सारांश (ऐब्सट्रेक्ट) हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में होता है, परंतु मूल शोधपत्र हिंदी में ही होता है। इंटरनेट पर भी यूनीकोड फॉन्ट में अब हिंदी में बहुत जानकारी उपलब्ध है। अब हिंदी विज्ञान की भी वेबसाइटें हैं।

अंत में एक महत्वपूर्ण समाचार और इस वर्ष आई आई टी प्रवेश परीक्षा में हिंदी की धूम रही। 27 मई 2010 के दैनिक जागरण में मुखपृष्ठ पर सबसे बड़े अक्षरों में शीर्षक छपा– 'आई आई टी–जे ई ई में हिंदी का परचम। हिंदी माध्यम के 554 परीक्षार्थियों ने हासिल की सफलता। अतः अब इंजीनियरिंग की पढ़ाई में भी हिंदी–अंग्रेजी द्विभाषी माध्यम उपयोगी है। इस दिशा में प्रयासों का शुभारंभ पहले ही हो चुका है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने हिंदी में अनेक उच्च कोटि की तकनीकी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) ने 2003 से 'तकनीकी पाठ्य पुस्तक पुरस्कार योजना' प्रारंभ की है। इसका मुख्य उद्देश्य राजभाषा हिंदी में उत्कृष्ट पाठ्यपुस्तक लेखन तथा हिंदी अनुवाद को बढ़ावा देना है। इसके अंतर्गत हिंदी भाषा में प्रकाशित डिग्री (स्नातक/स्नातकोत्तर) या डिप्लोमा स्तर की मौलिक और/अथवा अनूदित पाठयपुस्तकों के लेखकों को 31,000/– से 1,00,000/– रुपए तक के पुरस्कार देने की व्यवस्था है। इंजीनियरी में हिंदी–अंग्रेजी द्विभाषी पुस्तकें प्रचलित होने का बहुत गहरा सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा और देश की वैज्ञानिक तथा तकनीकी उन्नति तीव्र गति से होगी। फिर कुछ ही वर्षों में भारत विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी हो सकेगा।

ooo

विज्ञान समाचार

कोशिकाएं करेंगी दिल की मरम्मतः

दीपक कोहली

हृदयाघात से क्षतिग्रस्त दिल की भी अब मरम्मत होगी। घायल हिस्से को बदलने के साथ ही उसे फिर से नया व मजबूत बनाया जा सकता है। दिल का मरम्मत की यह महत्वपूर्ण जिम्मेदारी निभाएंगी रक्तवाहिनियों में पाए जाने वाली विशिष्ट कोशिकाएँ। अमस्टर्डम, नीदरलैंड स्थित वीयू विश्वविद्यालय 'इंस्टीट्यूट फॉर कार्डियोवैस्कुलन रिसर्च' के निदेशक प्रो.वी.वान. हिन्सबर्ग के अनुसार अंतःस्तर कोशिकाएँ नाम की ये कोशिकाएँ हृदयाघात, उच्च रक्त चाप, ट्यूमर, बिंबाणु आदि बीमारियों का आसानी से इलाज कर सकती हैं। इन विशिष्ट कोशिकाओं की मदद से न सिर्फ दिल की मरम्मत की जा सकती है अपितु अर्बुदों को भी नष्ट किया जा सकता है। शोधकर्ताओं के अनुसार ये कोशिकाएँ खासी करामाती हैं और खून की नसों की आंतरिक सतह पर सबसे ऊपर पाई जाती हैं। इनका मुख्य कार्य रक्त को जमने से रोकना व जहाँ जरूरत हो वहाँ नई रक्तवाहिनियों का निर्माण करना है। ये कोशिकाएँ स्वयं ही स्थान का चयन करती हैं व रक्तवाहिनियाँ बनाती हैं। इसके साथ ही दबाव के चलते रक्तवाहिनियों को होने वाले नुकसान की भरपाई भी ये स्वतः करती हैं। इनकी अतिसक्रियता के चलते विभिन्न स्थानों पर अर्बुद (ट्यूमर) बनने लगते हैं, जबकि इनकी निष्क्रियता से रक्तवाहिनियां टूटने लगती हैं। प्रो. हिन्सबर्ग के अनुसार इन कोशिकाओं पर नियंत्रण करके इनसे मनचाहे कार्य कराने का प्रयास किया जा रहा है। एक बार नियंत्रण में आने के बाद ये चमत्कार दिखा सकती हैं। उनके अनुसार जब भी किसी को हृदयघात होता है तो उसके दिल का एक हिस्सा क्षतिग्रस्त हो जाता है। हृदयाघात के समय इस हिस्से की कोशिकाओं को तत्काल यह तय करना होता है कि वे मरेंगी या जीवित रहेंगी। आघात को सहने में अक्षम कोशिकाएं मर जाती हैं।

चर्म रोग हो सकते हैं मोबाइल फोन से :

दीपक कोहली

मोबाइल फोन का इस्तेमाल करने वाले हो जाएं सावधान। कारण, ब्रिटेन त्वचा विज्ञानियों की ऐसोसिएशन के शोधकर्ताओं का मानना है कि मोबाइल या सेल फोन का अत्यधिक इस्तेमाल करने वाले लोगों को त्वचा में खुजली से संबंधित शिकायतें पैदा हो सकती हैं। विशेषज्ञों के अनुसार सेल फोन का प्रयोग करने वालों के चेहरों और कानों पर जो पित्तिकाएँ (रेशेस) होती हैं, उसका कारण मोबाइल हैंडसेट पर लगा 'निकेल' है, जो प्रत्यूर्जी प्रतिक्रिया पैदाकर त्वचा संबंधी समस्याएँ पैदा कर देता है। शोधकर्ताओं के मुताबिक हैंडसेट के बटनों और स्क्रीनों के चारों तफर निकेल का इस्तेमाल होता है। जो लोग निकेल के प्रति अत्यंत संवेदनशील होते हैं, उनके गालों व कानों की त्वचा (जहाँ पर हैंडसेट के निकेल का भाग अधिक स्पर्श करता है) का भाग लाल हो जाता है, उस पर हल्की सूजन आ सकती है या फिर त्वचा शुष्क हो जाती है या फट सकती है। विशेषज्ञों ने इस रोग को 'मोबाइल फोन त्वकशोथ' की संज्ञा दी है। इस रोग से बचाव के लिए विशेषज्ञों की सलाह है कि सेल फोन पर मतलब की ही बातें करें। किसी एक व्यक्ति से 5 से 10 मिनट से ज्यादा बात करना त्वचा की सेहत के लिए समस्याएँ उत्पन्न कर सकता है।

जीन में छिपे हैं फैलादी आत्मविश्वास के राज :

दीपक कोहली

कुछ लोग जन्म से ही जीतने के आदी होते हैं, क्योंकि उनके साथ उनका फौलादी आत्मविश्वास होता है। एक अध्ययन में पाया गया है कि दृढ़ आत्मविश्वास सिर्फ दिमाग का खेल नहीं होता बल्कि किसी व्यक्ति के जीन तय करते हैं कि उसमें आत्मविश्वास का स्तर क्या होगा। 'किंग्ज कॉलेज, 'लंदन के शोधकर्ताओं ने दृढ़ आत्मविश्वास और जीन के संबंधों की पड़ताल की। पूर्व की धारणाओं के अनुसार माना जाता रहा है कि दृढ़ आत्मविश्वास के पीछे आर्थिक–सामाजिक कारण हैं। लेकिन, इस शोध में पता चला कि दबावों के बीच बढ़िया परिणाम देने, किसी चुनौतीपूर्ण काम का जिम्मा लेने वाला आत्मविश्वास व्यक्ति में जन्मजात होता है। प्रोफेसर रॉबर्ट प्लोमिन और उनकी सहयोगी कोरिना ग्रीवर ने आत्मविश्वास और जीन के आपसी संबंध तलाशने के लिए 3,700 जुड़वाँ स्कूली बच्चों पर अध्ययन किए। रॉबर्ट के अनुसार बच्चों का आत्मविश्वास अपने स्कूली विषयों पर पकड़ के सापेक्ष आसानी से जांचा जा सकता है। कई बार ऐसा होता है कि कोई बच्चा विषय पर उतनी पकड़ न रखे लेकिन जवाब वह पूरे आत्मविश्वास से देता है। उन्होंने बताया कि सात से दस वर्ष की अवस्था वाले सम और विषम जुड़वाँ बच्चों पर ये अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण था कि जुड़वाँ बच्चों में जीन समान होते हैं। अध्ययन में शामिल जुड़वाँ बच्चों की मानसिक क्षमता की जांच में उनमें आत्मविश्वास और बुद्धि लब्धि (आई.क्यू.) का स्तर समान पाया गया। जाहिर तौर पर यह जीन की समानता के कारण ही था।

सूंघकर कैन्सर का पता लगा सकते हैं कुत्ते

दीपक कोहली

आस्ट्रेलिया में एक कुत्ते ने अपने मालिक के कैन्सर का सूंघकर पता लगाते हुए उसकी जान बचाने में मदद की है। कुत्ते के इस कारनामे से वैज्ञानिकों की इस धारणा को बल मिला है कि कुत्ते–बिल्ली जैसे पालतू जानवरों में कैन्सर सूंघकर पता लगाने की स्वाभाविक क्षमता होती है। आस्ट्रेलिया में पाउला बोकमेन के पालतू कुत्ते 'केस्पर' ने जब उसकी बांह के नीचे लगातार सूंघना शुरू किया तो आरंभ में उन्हें लगा कि वह वफादारी दिखाते हुए ऐसा कर रहा है। जब कैस्पर काफी देर तक नहीं हटा तो उन्हें कुछ संदेह हुआ। चिकित्सीय जांच कराने पर बोकमेन में कैंसर के शुरुआती लक्षण पाए गए। संभवतः केस्पर उनका ध्यान इस ओर ही आकर्षित कर रहा था।

कुत्तों की सूंघने की जबरदस्त क्षमता से हर कोई वाकिफ है। वैज्ञानिकों ने हाल ही में इस बात की पुष्टि की है कि 97 फीसदी पालतू जानवर सूंघकर कैन्सर का पता लगा सकते हैं। इसको दृष्टिगत करके आस्ट्रेलिया के एक प्रमुख चिकित्सक तो कैंसर का पता में कुत्ते की मदद भी लेने लगे हैं। पालतू कुत्ते की सज़गता की वजह से बोकमेन समय पर इलाज कराकर कैंसर को मात देने में सफल हुए।

आंखों की भाषा समझते हैं पक्षी :

दीपक कोहली

मनुष्य अक्सर जानवरों और पक्षियों से खुद को श्रेष्ठ मानता है, क्योंकि उसके पास हावभाव और संकेतों को समझने की क्षमता होती है। लेकिन ताजा अध्ययन में पता चला है कि पक्षी भी आंखों की भाषा और शरीर के संकेतों की गहरी समझ रखते हैं। वे आंखों की भाषा से प्रेम, ईर्ष्या आदि का इजहार करते हैं।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के 'ऑगस्ट वॉन बेयर्न' के अनुसार 'जैकडॉज' (कौवे की तरह दिखने वाला एक पक्षी) किसी व्यक्ति का हावभाव देखकर अपना व्यवहार तय करते हैं। वे मानव नेत्र के संकेत को समझने में माहिर होते हैं। 'नाधन एमरी' के नेतृत्व में कैंब्रिज और स्वीन मैरी विश्वविद्यालय ने संयुक्त रूप से एक शोध किया। शोधकर्ताओं के अनुसार जैकडॉज की आंखों की बनावट मनुष्य की आंखों जैसी होती है। काली पुतली और रजत श्वेत (सिल्वर व्हाइट) आंखों वाले जैकडॉज नेत्रों के इशारे को मजबूत माध्यम मानते हैं। आंखों के इशारे समझने में जैकडॉज और दूसरे पक्षी इसलिए सक्षम होते हैं कि क्योंकि पक्षियों के जोड़े खुद भी आंखों ही आंखों में प्रेम या ईर्ष्या की भाषा बोलते हैं।

उंगलियां गंवाने वालों के लिए जैवोनिक उंगलियों का वरदान

दीपक कोहली

फिल्म 'टर्मिनेटर' के अर्नाल्ड श्वार्जेनगर जैसे कृत्रिम हाथ की कल्पना अब साकार हो गई है। वैज्ञानिकों ने कई वर्षों की मेहनत से अब जैवोनिक या जैव–इलेक्ट्रॉनिक (बायोनिक) अंगुलियां बनाने में सफलता पाई है। कठोर लेकिन भार में बेहद हल्के इस प्लास्टिक उपकरण 'प्रोडिजिट्स को छोटी सी मोटर से लोड़ किया गया है, जिसके जरिए कृत्रिम उंगलियों को मोड़ने, पकड़ बनाने तथा चीजों को उठाने, आदि का काम किया जा सकता है।

यह खोज ऐसे हजारों लोगों के लिए बड़ी उम्मीद साबित हो सकती है जो उंगली न होने के कारण पानी का गिलास पकड़ने, किसी चीज को उठाने अथवा एटीएम मशीन में पिन नंबर दबाने में नाकाम थे। उल्लेखनीय है कि संक्रमण, हादसे या जन्मजात विकृति के चलते इस समय दुनिया के करीब 12 लाख लोगों के हाथ की एक या इससे अधिक उंगलियां नहीं हैं। 'प्रोडिजिट्स' उंगलियों को पकड़ बनाने की शक्ति देने वाला उपकरण है जो ऐसी समस्या से जूझ रहे लोगों को अपने काम खुद करने के लिहाज से आत्मनिर्भर बनाता है। मस्तिष्क के जरिए मिले संदेश उंगलियों में लगे संवेदक (सेंसर) तक भेजे जाते हैं। इसके आधार पर उंगलियां अभिक्रिया करती हैं। वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि इसके जरिए वे अंगभंगता से जूझ रहे लोगों के शरीर के उस खास हिस्से में जान फूंकने में सफल रहेंगे।

बृहस्पति के चंद्रमा पर जीवन की संभावनाएं :

दीपक कोहली

पृथ्वी से इतर जीवन संभावनाएँ तलाशने में लगे वैज्ञानिकों को बृहस्पति ग्रह पर जीवन की संभावनाएं दिखने लगी हैं। चांद पर पानी की मौजूदगी का पता चलने के साथ ही अमेरिकी खगोलशास्त्रियों ने बृहस्पति के चंद्रमा पर मौजूद समुद्र में जीवन की संभावनाएँ तलाशी हैं। एरिजोना विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओ ने पाया है कि यूरोप पर मौजूद समुद्र में करीब तीस लाख टन मछलियाँ व उसके जैसे दूसरे जलप्राणी रह सकते हैं।

शोधकर्ता रिचर्ड ग्रीनबर्ग के अनुसार, यूरोप की सतह पर मौजूद समुद्र का विस्तार लगभग पूरे यूरोप पर है। बर्फ की सतह के करीब 160 किलोमीटर नीचे का वातावरण मछली या फिर उनके जैसे जलजीवियों के लिए अनुकूल है। ताजा अध्ययनों में पाया गया है कि इस समुद्र में अनुमान से सौ गुना ज्यादा ऑक्सीजन मौजूद है। शोधकर्ताओं के अनुसार समुद्र के इस वातावरण में करीब 30 लाख टन मछलियाँ यहां आसानी से प्राणवायु हासिल कर सकती हैं। यूरोप पर ऑक्सीजन पर्याप्त होने के तो सबूत हैं, पर जीवन के लिए जरूरी दूसरी परस्थितियों की पड़ताल अभी की जानी है।

पेड़ बताएंगे जलवायु-परिवर्तन का इतिहास :

दीपक कोहली

सैंकड़ों साल पहले किसी इलाके में मौसम कैसा था और तापमान व वर्ष का क्या हाल था ? अब इन सबकी जानकारी पेड़ों के जरिए मिलेगी। प्रकृति के बदलावों के मूक गवाह वृक्षों से अब जलवायु परिवर्तन का इतिहास मालूम होगा। पेड़ों में साल–दर–साल पड़ने वाले वलयों से इसकी जानकारी मिलेगी। वैज्ञानिक भाषा में इस प्रकार के अध्ययन को द्रुमकालानुक्रमिकी (डेन्ड्रोक्रॉनोलॉजी) कहा गया है।

कनाडा के शोधकर्ताओं ने दावा किया है कि वृक्षों के वलयों में विद्यमान कार्बन और ऑक्सीजन के समस्थानिकों से पता चल सकेगा कि पूर्व में जलवायु–परिवर्तन में कैसे और क्या बदलाव हुए थे। इन वलयों से पिछली प्राकृतिक घटनाओं की सटीक जानकारी मिल सकेगी। वैज्ञानिक ट्रेवर पोर्टर के नेतृत्व में टीम ने उत्तरी कनाडा के मैकेंजी डेल्टा इलाके में 'व्हाइट स्प्रूस' वृक्षों के वलयों में तापमान के आंकड़ों के तुलनात्मक आंकड़े पेश किए। पोर्टर ने बताया कि विभिन्न पेड़ों में वलयों की चौड़ाई कम–ज्यादा पाई गई। इससे बीते वक्त में जलवायु परिवर्तन के आंकड़े एकत्र करने में कठिनाई आई। लेकिन इन पेड़ों के समस्थानिकों से मिले संकेतों में ज्यादा अंतर नहीं था। उन्होंने कहा कि सिर्फ तीन–चार पेड़ों से ही सही आंकड़े जुटाए जा सकते हैं। इससे किसी खास इलाके में जलवायु–परिवर्तन के बारे में जानकारी हासिल करने में आसानी होगी। इससे पहाड़ों, नदियों और दूसरे प्राकृतिक संसाधनों पर लंबा शोध करने की जरूरत नहीं होगी। उनके मुताबिक वलय के कई छोटे टुकड़ों से ही तापमान के स्तर के बारे में बहुत कुछ जाना जा सकेगा।

लेखक-परिचय

1. **डॉ. दीपक कोहली**
   5/104, विपुल खंड,
   गोमती नगर, लखनऊ – 226010

2. **डॉ. नवीन कुमार बौहरा**
   प्लॉट 389, गली नंबर 10
   मिल्कमैन कॉलोनी
   पाल रोड, जोधपुर (राजस्थान)

3. **श्री नवनीत कुमार गुप्ता**
   सी-24, कुतुब इंस्ट्टियूशनल एरिया
   नई दिल्ली – 110016

4. **श्री घनश्याम तिवारी**
   संयुक्त निदेशक
   राजभाषा एवं संगठन पद्धति निदेशालय
   डी.आर.डी.ओ. मुख्यालय
   डी.आर.डी.ओ. भवन
   राजाजी मार्ग, दिल्ली

5. **डॉ. शंकरलाल**
   राष्ट्रीय सलाहकार (बीज)
   राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन
   126 एन.सी.सी. बीज भवन
   पूसा परिसर, नई दिल्ली-110012

6. **प्रो. नीता कपूर**
   विज्ञान विद्यापीठ
   इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
   नई दिल्ली

7. **डॉ. आर. एस. सेंगर**
   सह प्रोफेसर, सरदार वल्लभभाई पटेल
   कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
   मेरठ – 250110 (उ.प्र.)

8. **श्री विवेकानंद प्रताप राव**
   टिशू कल्चर लैब
   सरदार बल्लभ भाई पटेल
   कृषि एवं प्रौद्यागिकीय विश्वविद्यालय
   मेरठ, (उत्तर प्रदेश)

9. **डॉ. जे. एल. अग्रवाल**
   3, ज्ञान लोक, मयूर विहार
   शास्त्रीनगर, मेरठ 250004 (उ.प्र.)

10. **श्री जगनारायण**
    विज्ञान पत्रकार
    ईशान स्टूडियो
    श्री विश्वनाथ मंदिर
    दुकान संख्या-20
    काशी हिंदू विश्वविद्यालय
    वाराणसी

11. **सुश्री मधु ज्योत्स्ना**
    ईशान स्ट्रडियो
    श्री विश्वनाथ मंदिर
    काशी हिंदू विश्वविद्यालय
    वाराणसी- 221005

12. **डॉ. के.के. शर्मा, पूर्व प्राचार्य**
    1 व 7 वैशाली नगर,
    अजमेर (राजस्थान)

13. **श्री प्रशांत**
    द्वारा श्री क्रांति कुमार
    निकट सिन्डिकेट बैंक,
    अवध नगर
    मैन पुरी (उत्तर प्रदेश)

आयोग के प्रकाशन

शब्दसंग्रह, शब्दावलियाँ

भौतिकी		भाषा विज्ञान परिभाषा (कोश खंड 1)	89.00
भौतिकी शब्द संग्रह	119.00	भाषा विज्ञान परिभाषा (कोश खंड 2)	59.00
अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	45.00	**जीव विज्ञान**	
इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा कोश	22.00	कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह	62.00
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश	10.00	पर्यावरण विज्ञान शब्द-संग्रह	381.00
भौतिकी परिभाषा कोश	700.00	प्राणि विज्ञान परिभाषा कोश	216.00
गृह विज्ञान		सूक्ष्म जैविकी परिभाषा कोश	45.00
गृह विज्ञान शब्द-संग्रह	600.00	कोशिका जैविकी परिभाषा कोश	121.00
कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्यागिकी		**लोक प्रशासन**	
कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली	57.00	लोक प्रशासन शब्दावली	52.00
कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश	102.00	**गणित**	
सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह	231.00	गणित शब्द-संग्रह	143.00
रसायन		गणित परिभाषा कोश	203.00
रसायन शब्द संग्रह	592.00	सांख्यिकी परिभाषा कोश	18.00
इस्पात एवं अलौह धातुकर्म शब्दावली	55.00	**भूगोल**	
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00	भूगोल शब्द-संग्रह	200.00
धातुकर्म परिभाषा कोश	278.00	भूगोल परिभाषा कोश	10.00
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश	25.00	मानव भूगोल परिभाषा कोश	18.00
रक्षा		मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश	231.00
समेकित रक्षा शब्दावली	284.00	**अनुप्रयुक्त विज्ञान**	
गुणता नियंत्रण		प्राकृतिक विपदा शब्दावली	17.00
गुणता नियंत्रण शब्दावली	38.00	जलवायु विज्ञान शब्दावली	131.00
भाषा विज्ञान		वानिकी शब्द-संग्रह	440.00
भाषा विज्ञान शब्दावली	113.00	**मनोविज्ञान**	
(अेग्रजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)		मनोविज्ञान परिभाषा कोश	9.50

मनोविज्ञान शब्दावली	247.00
इतिहास	
इतिहास परिभाषा कोश	20.50
प्रशासन	
प्रशासन शब्दावली	20.00
प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) प्रकाशनाधीन	
शिक्षा	
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-1	13.00
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-2	99.00
आयुर्विज्ञान	
आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (शल्य विज्ञान)	338.00
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी)	279.00
समाज शास्त्र	
समाज कार्य परिभाषा कोश	16.25
समाज-शास्त्र परिभाषा कोश	71.40
नृविज्ञान	
सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश	24.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह	
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, खंड 1	87.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, खंड 2	87.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान (हिंदी-अंग्रजी)	236.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह मानविकी और सामाजिक विज्ञान खंड 1,2	292.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह	
मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	350.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, कृषि विज्ञान	278.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान :	
आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान, शारीरिक नृविज्ञान	239.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह :	
आयुर्विज्ञान कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)	48.50
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह: मुद्रण इंजीनियरी	48.50
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह: इंजीनियरी (सिविल, विद्युत, यांत्रिकी)	340.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : पशु चिकित्सा विज्ञान	82.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह: प्राणि विज्ञान	311.00
भू-विज्ञान	
भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00
सामान्य भूविज्ञान शब्दावली	101.00
आर्थिक भूविज्ञान शब्दावली	75.00
भूभौतिकी शब्दावली	67.00
शैलविज्ञान शब्दावली	82.00
खनिज विज्ञान शब्दावली	130.00
अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्दावली	115.00
भूविज्ञान परिभाषा कोश	63.00
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	13.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली	73.00
शैलविज्ञान परिभाषा कोश	153.00
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश	173.00
खनन एवं भूविज्ञान शब्द-सग्रह	32.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्दसंग्रह जीवाश्मविज्ञान शब्दावली	129.00
कृषि	
रेशम विज्ञान शब्द-संग्रह	50.00
कृषि कीटविज्ञान परिभाषा कोश	125.00
सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
मृदाविज्ञान परिभाषा कोश	77.00

इंजीनियरी	
रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह	51.00
विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश	94.00
सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश	10.00
वनस्पति विज्ञान	
वनस्पति विज्ञान शब्द-संग्रह	86.00
वनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश	75.00
पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पुरावनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश	80.00
दर्शनशास्त्र	
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 1)	151.00
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 2)	124.00
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 3)	136.00
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश	198.00
पुस्तकालय विज्ञान	
पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा कोश	49.00
पत्रकारिता	
पत्रकारिता परिभाषा कोश	87.50
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली	12.25
पुरातत्व विज्ञान	
पुस्तकालय विज्ञान शब्दावली	
पुरातत्वविज्ञान परिभाषा कोश	509.00
कला	
पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	343.00
प्रबंधविज्ञान परिभाषा कोश	170.00
अर्थशास्त्र	
अर्थशास्त्र परिभाषा कोश	117.00
अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65
अन्य	
अंतरराष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एंव टेलीविजन परिभाषा कोश	200.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन शब्दावली	75.00

संदर्भ ग्रंथ

ऐतिहासिक नगर	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
समुद्री यात्राएं	79.00
विश्व दर्शन	53.00
अपशिष्ट प्रबंधन	53.00
कोयला : एक परिचय	425.00
रत्न विज्ञान : एक परिचय	115.00
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं प्रबंधन	23.00
भारत में गैस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	559.00
2 दूरीक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
भारत में प्याज एवं लहसुन की खेती	82.00
पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग	60.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00

वैज्ञानिक शब्दावली: अनुवाद एवं मौलिक लेखन	34.00
मृदा-उर्वरता	410.00
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण	105.00
पशुओं के कवकीय रोग : उनका उपचार एवं नियंत्रण	93.00
पराज्यामितीय फलन	90.00
सामाजिक एवं प्रक्षेत्र वानिकी	54.00
विश्व के प्रमुख धर्म	118.00
पृथ्वी : उद्‌भव और विकास	470.00
पृथ्वी से पुरातत्व	40.00
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी	90.00
द्रवचालित मशीन	66.50
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन	214.00
मृदा एवं पादप-पोषण	367.00
नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी	398.00
विश्व के प्रमुख धर्मों में धर्मसमभाव की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन	490.00
पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन	367.00
स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	167.00
भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण	343.00
भविष्य की आशा : हिंद महासागर	154.00
भारतीय कृषि का विकास	155.00
विकास मनोविज्ञान भाग-1	40.00
विकास मनोविज्ञान भाग-2	30.00
कृषिजन्य दुर्घटनाएं	25.00
इलेक्ट्रॉनिक मापन	31.00
वनस्पतिविज्ञान पाठमाला	16.00
इस्पात परिचय	146.00
जैव-प्रौद्‌योगिकी : अनुसंधान एवं विकास	134.00
विश्व के प्रमुख दार्शनिक	433.00
प्राकृतिक खेती	167.00
हिंदी विज्ञान पत्रिकारिता : कल, आज और कल	167.00
मानसून पवन : भारतीय जलवायु का आधार	112.36
हिंदी में स्वतंत्रता-परवर्ती विज्ञान लेखन	280.00

ग्राहक फार्म

सेवा में :
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली- 110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए .....से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .....दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....

पूरा पता .....

.....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क :	**भारतीय मुद्रा**	**विदेशी मुद्रा**	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83	डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 8.00	पौंड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50	डालर 2.88

डिमांड ड्राफ्ट ''अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग'' के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्ल करें:

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री..... इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के ..... विभाग का /छात्र/की छात्रा है।

हस्ताक्षर

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धन राशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉर्वर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नही होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नही होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाशन विभाग, (शहरी मामले व रोजगार मंत्रालय), सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली - 110001
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001
6.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली - 110003
7.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001

MGIPRRND—76 HRD /2013—1000 Copies

© भारत सरकार

प्रकाशन-नियंत्रक
अप्रैल–जून-2011

पी. सी. एस. टी. टी. (4-6) 11
1,000

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
2013